विश्वेश्वरानन्द-संस्थान प्रकाशन—१८८

सर्वदानन्द-विश्व-ग्रन्थमाला

SARVADANAND UNIVERSAL SERIES

स्वर्गत (The Late)



श्रीमान् स्वामी सर्वदानन्द

Shri Swami Sarvadanand

सं. १९१६–६९ (1859–1912)

ग्रन्थ ३६

Volume XXXVI

ग्रन्थमाला-स्मारक-समर्पण-सङ्कल्पः

★ पञ्चापे लब्धजन्माऽऽसीद् होश्यारपुर-पार्श्वतः ।
महात्मा **सर्वदानन्दस्** सिद्ध-तपा यतीश्वरः ॥१॥

★ वेद-वेदाङ्ग-सचूडो वेदान्त - शान्त - मानसः ।
सत्यधर्म - प्रचारात्म - लोकसेवा - दृढव्रतः ॥ २ ॥

★ सत्प्रेरणाभिराशीभिर् यः खलु मुनि-सत्तमः ।
अस्माकं सर्वदा मान्यः **संस्थान**स्याऽस्य पोषकः ॥ ३ ॥

★ तस्याऽस्तु सुचिर-स्मृत्यै पूजायै च मनस्विनः ।
सद्ग्रन्थ-विश्व-मालेयं श्रद्धया परयाऽर्पिता ।
इति निवेदयेते तत् - **सम्पादक - प्रकाशकौ** ॥ ४ ॥

सम्पादकः

विश्वबन्धु शास्त्री, ऍम. ए., ऍम ओ. ऍल.

प्रकाशकः
वि. वैदिक शोध संस्थान
होशिआरपुर

स. वि. ग्रन्थमाला—३६

वीर शिवाजी

श्री श्रीपाद जोशी

१९६१

पंजाब सरकार के भाषा विभाग
की सहायता से प्रकाशित

लेखक :

श्रीपाद जोशी

मूल्य

प्रकाशक तथा मुद्रक—
देवदत्त शास्त्री, विद्याभास्कर,
वि. वैदिक शोध संस्थान प्रेस,
साधुआश्रम, होशिआरपुर

सस्नेह समर्पित

महाराष्ट्र एवं शिवाजी के प्रेमी

ख्यातनामा बंगला साहित्यिक

श्री शरदिन्दु वंद्योपध्याय

के

करकमलों में

—श्रीपाद जोशी

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

आमुख

भारत के प्रधान मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने एक बार यह कहा था कि 'छत्रपति शिवाजी महाराज केवल महाराष्ट्र के ही नहीं, बल्कि सारे भारतवर्ष के महापुरुष हैं। उनके जीवन से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं।" यह बात बिल्कुल सही है, पर साथ ही यह भी एक तथ्य है कि शिवाजी के विषय में सच्ची जानकारी बहुत ही कम लोगों को है। अँगरज़ों एवं मुसलमानों के समर्थक इतिहासकारों ने शिवाजी को डाकू, लुटेरा, दग़ाबाज़ ठहरा कर उन्हें बदनाम करने में कोई कसर नहीं उठा रखी थी। पर जैसा कि विश्वकवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है—'सत्य कभी नहीं मरता; उसे विस्मृति के तल में गाड़ कर रखा भी नहीं जा सकता; वह किसी न किसी दिन ऊपर आ ही जाता है और तब वह सब के लिए सिर पर चढ़कर बोलता है।' शिवाजी के विषय में भी यही हुआ है। जो लोग उन्हें 'गुमराह देशभक्त' या 'दग़ाबाज़ लुटेरा' कहते थे वे ही आज उनके स्तुति-पाठक बन गए हैं। क्योंकि शिवाजी वास्तव में पूजनीय और स्तवनीय ही थे।

महाराष्ट्र के लिए तो शिवाजी सदा से स्फूर्तिदाता रहे हैं। विशेषतया जब कभी महाराष्ट्र के साथ अन्याय हुआ है, अत्याचार हुआ है तब उसे शिवाजी का स्मरण तीव्रता से हुआ है और शिवाजी ने उसे कार्य की, अन्याय के प्रतिकार की प्रेरणा दी है। अतः, यह स्वाभाविक ही था कि महाराष्ट्र में शिवाजी के विषय में गहरी खोज होती रहती। पिछले सौ वर्षों में शिवाजी के संबंध में अंग्रेज़ी एवं मराठी में कई ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं और आए दिन

लिखे जा रहे हैं। क्योंकि नए-नए ऐतिहासिक साधन मिलते जा रहे हैं, जिन से शिवाजी से संबन्धित जानकारी में वृद्धि होती जाती है। पिछले दो तीन वर्षों में मराठी में शिवाजी की कई महत्त्वपूर्ण प्रमाणित जीवनियां निकली हैं, जिनसे मुझे यह जीवनी लिखने में सहायता मिली है। अतः, उन सभी लेखकों का मैं आभारी हूँ।

जहाँ तक मुझे मालूम है, हिन्दी में शिवाजी की इतनी विस्तृत एवं अद्यतन खोजों के आधार पर लिखी गई जीवनी मौजूद नहीं है। वैसे महाकवि भूषण की अप्रतिम कविताओं ने शिवाजी को हिन्दी भाषी जनता से शताब्दियों पहले परिचित कर रखा है, परन्तु शिवाजी की प्रामाणिक जीवनी के अभाव में उनके सम्बन्ध में कई अच्छी-बुरी कल्पनाएँ जन-मानस में फैली हुई हैं। मुझे आशा है कि इस कृति से शिवाजी के विषय में फैली हुई भ्रान्त धारणाएँ किसी सीमा तक कम हो जायेंगी।

वैसे इतिहास मेरा विषय नहीं, फिर भी जब विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध-संस्थान के संचालक ने शिवाजी की जीवनी लिख कर देने की आज्ञा मुझे की, मैंने उसे हर्ष के साथ स्वीकार किया। क्यों कि जानता था कि उसके कारण मुझे शिवाजी के जीवन का अधिक वैज्ञानिक ढंग पर अध्ययन करने का सुअवसर मिलेगा और राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा भी मेरे हाथों हो सकेगी। मुझे संतोष है कि इस जीवनी के द्वारा मेरे ये दोनों हेतु सफल हुए हैं। अतः श्री वि. वै. शो. संस्थान के संचालक का मैं बहुत कृतज्ञ हूं।

मैंने यह जीवनी विशेष रूप से हिन्दी भाषी पाठकों को ध्यान में रखकर लिखी है। इसलिए इसमें उन घटनाओं का व्यौरा विस्तार के साथ नहीं दिया गया है, जिन्हें महाराष्ट्र के लोग तो

आसानी से समझ सकते हैं, पर महाराष्ट्र के बाहर के लोगों को उन्हें समझने में कठिनाई हो सकती है और इसीलिए उनमें उनकी रुचि भी नहीं हो सकती। मैं स्वयं गांधी जी के मार्ग पर विश्वास रखने वाला हूँ। सर्व-धर्म-समभाव मेरे लिए बहुत कुछ स्वाभाविक हो गया है। भारत के विभिन्न प्रदेशों के रहने वाले लोगों से मुझे प्रेम है। इसलिए मैं समझता हूँ कि इस जीवनी के लिखने में मैं काफी तटस्थ भाव रख सका हूँ। जहाँ तक हो सका, महाराष्ट्र या हिन्दू धर्म के प्रति पक्षपात न करने का प्रयत्न मैं ने किया है, तो भी महाराष्ट्र और हिन्दूधर्म के प्रति प्रेम रखना मैं कोई पाप नहीं मानता।

आज हम लोग 'एक जगत्' का नारा लगा रहे हैं; विश्व-मानव के आदर्श को अपनाने का प्रयत्न कर रहे हैं और उसके लिए जात-पाँत, भाषा या प्रदेश के बन्धनों से मुक्त होने की चेष्टा कर रहे हैं। ऐसे समय में किसी धर्म, प्रदेश या भाषा का अभिमान रखना कुछ अर्थ भी नहीं रखता। परन्तु प्रकृतिगत दुर्बलताओं के सामने मानव को कभी-कभी झुक जाना पड़ता है। ऐसे समय पर महापुरुषों के जीवनों से बहुत कुछ प्रेरणा मिल सकती है। छत्रपति शिवाजी के जीवन से हमें ऐसी ही प्रेरणा मिलेगी—इसी आशा से मैंने यह जीवनी लिखने की धृष्टता की है और इसके लिए पाठक मुझे अवश्य क्षमा करेंगे।

गारगोटी (कोल्हापुर)
गणतंत्र दिवस,
२६ जनवरी १९६१

—श्रीपाद जोशी

अनुक्रम

— o —

महाराष्ट्र प्रदेश

छत्रपति शिवाजी की जीवनी से परिचय प्राप्त करने से पहले उस प्रदेश और उन लोगों की थोड़ी सी जानकारी प्राप्त कर लेना उचित होगा, जहाँ से शिवाजी का उदय हुआ और जिनकी सहायता से उन्होंने स्वराज्य की स्थापना करने का बीड़ा उठाया। किसी मानव की महत्ता में उसके आसपास की मौलिक एवं सामाजिक परिस्थिति का बहुत बड़ा हाथ रहता है।

नये महाराष्ट्र के बनने से पहले जिस प्रदेश को महाराष्ट्र कहा जाता था, उसमें निम्नलिखित तेरह जिलों का समावेश था—

पूना, अहमद नगर, दक्षिण सातारा, उत्तर सातारा, कोल्हापुर, रत्नागिरि, ठाणें, कुलाबा, डांग, नासिक, पश्चिम खानदेश, पूर्व खानदेश और सोलापुर।

शिवाजी का सम्बन्ध इनमें से प्रधानतया पूना, अहमद-नगर, सातारा, कोल्हापुर, रत्नागिरि और कुलाबा जिलों के साथ ही रहा। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरे विभागों से उनका सम्बन्ध नहीं था। उनका सम्बन्ध उनके जन्म के

पहले ही विदर्भ और मराठवाड़ा के साथ था। यहाँ यह स्मरण रहे कि शिवाजी के काल में भाषा की दृष्टि से प्रदेशों का विभाजन नहीं किया जाता था। तब महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्र आदि भाषा-आधारित स्वतन्त्र राज्य नहीं थे। बीजापुर के आदिलशाह और छत्रपति शिवाजी का शासन इन तीनों प्रदेशों के थोड़े-थोड़े अंशों पर था। यही नहीं, तमिल-भाषी तंजौर में भी मराठों का राज्य था।

परन्तु शिवाजी ने जिस प्रदेश में अपने स्वराज्य की नींव डाली और जिन लोगों के सहयोग से अपने उद्देश्य की पूर्ति का प्रयत्न किया उनका परिचय उल्लिखित महाराष्ट्र और उसकी जनता से ही प्राप्त होगा।

भारत के मानचित्र में महाराष्ट्र पश्चिम सागर के किनारे दिखाई देता है। पश्चिम सागर के समानान्तर सह्य पर्वत की श्रेणियां उत्तर से दक्षिण तक सैकड़ों मील चली गयी हैं। इस कारण महाराष्ट्र लगभग दो खण्डों में बंट गया है। पश्चिम की ओर का हिस्सा कोंकण कहलाता है और पूर्व का भाग देश कहलाता है। सभी कालों के स्वातंत्र्य-युद्धों में कोंकण का बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग रहा है।

सह्याद्रि की श्रेणियों के कारण कोंकण में बहुत अधिक वर्षा होती है। कहीं-कहीं तो यह दो ढाई सौ इंच तक पहुँच जाती है। ढलान के कारण यह बारिश सारी मिट्टी अपने साथ बहा ले जाती है। इसलिए ज़मीन ऊसर हो गयी है। उसमें केवल धान की उपज होती है और वह भी इतनी कम कि वह तीन-चार महीनों के लिए ही पर्याप्त होती है। शेष महीनों में कोंकणवासियों को नौकरी या मज़दूरी के लिए बाहर जाना पड़ता है। आजकल अधिकतर कोंकणनिवासी

बम्बई चले जाते हैं और वहाँ की मिलों में मज़दूरी करते हैं। पूर्व काल में ये लोग सेना में भर्ती हो जाते थे।

चूँकि एक-एक दाने के लिए कोंकण के निवासियों को प्रकृति के साथ संघर्ष करना पड़ता है; एड़ी-चोटी का पसीना एक करना पड़ता है; धूप में और बरसात में अथक परिश्रम करना पड़ता है, इसलिए ये लोग बड़े ही उद्योगी, स्वावलंबी, और सरल होते हैं। इस प्रदेश की एक अन्य विशेषता यह है कि यहाँ पर अमीर और गरीब का अन्तर बहुत कम है। गरीबों द्वारा सैनिक का पेशा अपनाने के कारण उनकी अपनी भी प्रतिष्ठा है। इसलिए उनमें स्वाभिमान की मात्रा कुछ अधिक रहती है। मनुष्य की योग्यता से उसका मूल्यांकन करने की शिक्षा मराठी सन्तों ने महाराष्ट्र को दी है, जिससे लोगों में समता का भाव सदा जाग्रत रहा है।

प्रसिद्ध चीनी यात्री युवानच्वांग ने सातवीं शताब्दी में इनके विषय में लिखा है कि "ये लोग स्वाभिमानी और लड़ाके हैं। जो लोग उनके साथ प्रेम का बर्ताव करते हैं उनके प्रति वे कृतज्ञ रहते हैं और जो उनके साथ अन्याय करते हैं, उनसे बदला लिए बिना वे नहीं रहते।"

शिवाजी से पूर्व का महाराष्ट्र

कहा जाता है कि आज जहाँ महाराष्ट्र प्रदेश है वहाँ किसी समय में दण्डकारण्य था, जहाँ भगवान् श्रीरामचन्द्र सीता और लक्ष्मण के साथ वनवास के लिए आये थे। वे पंचवटी में ठहरे थे, जो नासिक शहर के पास बतायी जाती है। उसके बाद धीरे-धीरे यहाँ बाहर से लोग आकर बसने लगे। कुछ लोग कर्नाटक-आन्ध्र से आये तो कुछ राजस्थान से। माना जाता है कि सारस्वत ब्राह्मण काश्मीर और बंगाल से आकर बसे हैं और कोंकण के चितपावन ब्राह्मण मिस्र या यूनान के निवासी थे।

दण्डकारण्य में जब आबादी बढ़ रही थी, उस समय मराठवाड़ा में मराठों की सत्ता का सूर्य ऊपर चढ़ रहा था। इसकी राजधानी प्रतिष्ठान या पैंठण थी। यहाँ सम्राट् शातवाहन राज्य करते थे। उन दिनों पैंठण उन्नति की चरम सीमा पर था। उसे दक्षिण-काशी भी कहा जाता था।

शातवाहनों से शिलाहारों तक (ईसा पूर्व २०० से सन् १२७१ ई० तक) अनेक राजकुलों ने यहाँ राज्य किया, जिनमें

राष्ट्रकूट, चालुक्य, आभीर, सेन्द्रक, कलचुरी, वाकाटक, कदंब आदि उल्लेखनीय हैं। महाराष्ट्र का अन्तिम सम्राट् रामचन्द्र यादव या रामदेवराव यादव था। उसके समय में दिल्ली में जलालुद्दीन खिलजी राज्य करता था। उसके भतीजे अलाउद्दीन खिलजी ने महाराष्ट्र पर हमला किया और रामदेवराव यादव को देवगिरि (दौलताबाद) के किले में घेर कर उसकी सेना को नष्ट कर दिया (६ फरवरी १२९४)।

अलाउद्दीन खिलजी के देहांत के बाद कुतबुद्दीन मुबारक-खाँ खिलजी, गयासुद्दीन तुग़लक़ और मुहम्मद तुग़लक़ ने राज्य किया। मुहम्मद तुग़लक़ के काल में उसके सरदार जाफ़रखाँ उर्फ़ हसन गंगू बहमनी ने दिल्ली शासन के विरोध में विद्रोह का झंडा उठाया और महाराष्ट्र पर सन् १३४६ में अधिकार कर लिया। उसने अपनी राजधानी देवगिरि से हटाकर सुदूर दक्षिण के गुलबर्गा में बनायी। इसके बाद महाराष्ट्र में बहमनी सुलतानों का राज्य चलने लगा।

सुलतान महमूदशाह बहमनी (१४८२-१५१८) के शासन-काल में पाँच सरदारों ने राज्य के पाँच टुकड़े कर लिए और वे स्वयं सुलतान बन बैठे। इस प्रकार बहमनी राज्य के निम्न-लिखित पाँच अलग राज्य बन गये :—

(१) बीदर की बरीदशाही, (२) अहमदनगर की निज़ामशाही, (३) बीजापुर की आदिलशाही, (४) बरार की इमादशाही और (५) गोलकुंडा की कुतुबशाही।

इनमें से बरीदशाही को बीजापुर के सुलतान ने सन् १६१८ ई० में अपने राज्य में मिला लिया। निज़ामशाही को दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ ने सन् १६३३ ई० में जीत

लिया। इमादशाही को अहमदनगर के निज़ामशाह ने सन् १५७४ ई० में अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया और बीजापुर तथा गोलकुंडा की सल्तनतों को मुगल सम्राट् औरङ्गजेब ने क्रमशः सन् १६८६ और सन् १६८७ ई० में अपने साम्राज्य में मिला लिया। शिवाजी का सम्बन्ध इन्हीं दो सल्तनतों के साथ विशेष रूप से रहा।

दक्षिण में मुसलमानों की संख्या कम थी, इसलिए सत्ताधारी सुलतानों को राज्य चलाने में हिन्दुओं की सहायता लेनी पड़ती थी। इनकी सेनाएँ तो पूरी की पूरी हिन्दुओं की ही बनी होती थीं और सेनापति तथा मंत्री आदि भी हिन्दू ही होते थे। इन राज्यों में निरन्तर आपसी लड़ाइयाँ होती रहती थीं। इससे एक लाभ यह हुआ कि मराठों को राज्य चलाने तथा लड़ाइयाँ लड़ने का अनुभव हो गया।

राजनैतिक दृष्टि से यह महाराष्ट्र की अवनति का काल था। सारा महाराष्ट्र मुसलमानों का दास बन गया था। परन्तु धार्मिक एवं सामाजिक दृष्टि से इस काल में अच्छा काम हुआ। हिन्दुओं के स्वराज्य की जो इमारत आगे चल कर महाराष्ट्र ने खड़ी की, उसकी नींव इसी काल में डाली गयी। संत ज्ञानेश्वर से लेकर समर्थ रामदास एवं तुकाराम तक के सभी मराठी सन्तों ने जनता को धर्म की शिक्षा दी, जिससे वह उसकी रक्षा के लिए कटिबद्ध हो गयी। संत एकनाथ ने आदिशक्ति भवानी से कहा था :—

म्लेच्छें गांजिलें देवभक्तां।
महिमा उच्छेदिला सर्वथा।
न चले जप तप तत्त्वतां।

एक रूप सर्व झाले।
बया दार उघड। दार उघड।

[हे माँ ! म्लेच्छों ने देवभक्तों को बहुत सताया है, सारी महिमा को नष्ट किया है। जपतप नहीं चल सकता। सारे एकरूप हो गए हैं, और तू किवाड़ बन्द करके चुपचाप बैठी है ! खोल दे दरवाजा ! खोल दे !]

अब आवश्यकता थी एक ऐसे युगपुरुष की जो इस तैयारी से लाभ उठाकर सभी पीड़ितों को एकत्रित करता और अत्याचारियों के विरुद्ध लोहा लेता।

यह स्थिति महाराष्ट्र की ही नहीं बल्कि सारे देश की थी। विदेशी एवं विधर्मी आततायियों के चंगुल में फंसी हुई भारतीय जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी।

ऐसे समय में छत्रपति शिवाजी महाराज का जन्म हुआ। और इस तरह तीन सौ वर्षों की अन्धेरी काली रात के बाद स्वराज्य की ऊषा भारत में फैली।

शिवाजी का जन्म

छत्रपति शिवाजी के पूर्वज राजस्थान से आये थे। वे आरम्भ में देवगिरि, वेरूळ (एलोरा) के आसपास बसे। उस प्रदेश में भोसली नामक एक गाँव है। प्रतीत होता है, उससे इन लोगों ने अपने लिए भोसला, भोंसुला या भोंसले नाम ले लिया है। उन दिनों ये लोग प्रधानत: खेती ही करते थे। परन्तु वे अपने को 'राजे' कहते थे। उनकी आस्था थी कि वे प्रभु रामचन्द्र जी के वंशज हैं, राजपूत हैं और उदयपुर के सिसोदिया वंश से उनका सम्बन्ध है। वे कहते थे कि अलाउद्दीन के विरुद्ध चित्तौड़ में लड़ते लड़ते अपने सात पुत्रों समेत खेत हुए राणा लक्ष्मणसिंह हमारे मूल पुरुष हैं।

इसी कुल में बाबाजी नामक एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उसके दो बेटे हुए, मालोजी और विठोजी। मालोजी के भी दो बेटे हुए, शाहजी और शरीफजी। इन्हीं शाहजी के पुत्र थे छत्रपति शिवाजी।

बाबाजी भोंसले एक छोटे-से जागीरदार थे। उनके पूर्वज

देवगिरि छोड़कर ग्रहमदनगर की तरफ बढ़े ग्रौर ग्रादिलशाही तथा निज़ामशाही की सीमाग्रों पर स्थित पांडेपेड़ गाँव में बस गये। बाबाजी के पुत्र मालोजी का विवाह फलटण के राजा निम्बालकर की बेटी उमा के साथ हुग्रा।

इन्हीं मालोजी ने भोंसले घराने की उन्नति की नींव रखी। इन्होंने वेरूळ (एलोरा) के धृष्णेश्वर मन्दिर का उद्धार किया ग्रौर सातारा में श्री शिखर शिंगणापुर के पहाड़ पर एक तालाब बनवाया। कहते हैं कि उन्हें खेत में गड़ा हुग्रा बहुत सा धन मिला था जिससे वे यह सब कर सके।

मालोजी ग्रौर विठोजी ने घोड़े ग्रौर शस्त्रास्त्र खरीद कर एक छोटी-सी सेना भी तैयार की। फिर ग्रपने पराक्रम से निज़ामशाह से जागीरें प्राप्त कीं। इनकी वीरता देख कर निज़ामशाह ने ग्रपने राज्य के एक तरफ की सीमा की रक्षा का भार इन्हें सौंप दिया। इस कार्य को करते हुए सन् १६०७ ई० में मालोजी एक लड़ाई में काम ग्राये।

उस समय शाहजी की ग्रायु केवल पाँच बरस की थी। ग्रतः उनका पालन-पोषण उनकी माता उमाबाई ग्रौर चाचा विठोजी ने किया। बचपन में ही उनका विवाह शिंदखेड के जागीरदार लखूजी जाधवराव की कन्या जिजाऊ (जीजीबाई) के साथ हुग्रा। जब वे वयस्क हुए तब निज़ामशाह ने उनके पिता मालोजी की जागीर उन्हें सौंप दी। शाहजी ग्रपने पराक्रम एवं व्यवहार से निज़ाम के प्रधानमंत्री मलिक ग्रम्बर के विश्वासपात्र बन गये।

शाहजी के विवाह के परिणाम स्वरूप भोंसले ग्रौर जाधव कुलों में ग्रच्छी मित्रता हो गयी थी। परन्तु एक ग्राकस्मिक

घटना के कारण इस मित्रता में कुछ समय के लिए बाधा पड़ गयी। बात यह हुई कि एक दिन दौलताबाद में निज़ामशाह का दरबार समाप्त होने पर दरबारी लोग जब अपने अपने स्थान को लौटने लगे तो खंडागळे नामक सरदार का हाथी पागल होकर लोगों को रौंदने लगा। उस हाथी को रोकने की कोशिश लखूजी जाधवराव के बेटे दत्ताजी और उनके सिपाही करने लगे। इस बात पर वहाँ झगड़ा हुआ और शाहजी के चचेरे भाई संभाजी के हाथों दत्ताजी मारा गया। यह खबर सुनते ही लखूजी गुस्से से पागल होकर संभाजी को तलवार के घाट उतारने पर उतारू हो गये। इस लड़ाई में शाहजी ने अपने चचेरे भाई की रक्षा के लिए तलवार उठायी। लखूजी की तलवार से शाहजी की भुजा पर इतने ज़ोर का वार हुआ कि शाहजी बेहोश हो गये। अंत में लखूजी ने संभाजी को मौत के घाट उतार दिया।

इस मनमुटाव ने संघर्ष का रूप धारण कर लिया। लखूजी को संदेह हुआ कि निज़ामशाह भी भोंसले के पक्ष में हो गये हैं। अतः उन्होंने निज़ाम की नौकरी पर लात मार दी और मुगलों से जा मिले। इससे निज़ाम के दरबार में शाहजी का महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया।

परन्तु यह बात निज़ामशाह के वज़ीर मलिक अम्बर को पसन्द नहीं आयी। उसने शाहजी के साथ झगड़ा शुरु किया, जिससे शाहजी बीजापुर के आदिलशाह के पास चले गये। शाहजी की वीरता से वे परिचित थे। इसलिए उन्होंने शाहजी को सर-ए-लश्कर अर्थात् सेनापति बना दिया। शाहजी ने बीजापुर की सेना की सहायता से निज़ामशाह के अधिकार में गया हुआ अपना पूना परगना और दूसरा प्रदेश जीत लिया और

मलिक अम्बर को हरा दिया। शाहजी सेना लेकर दक्षिण भारत में ठेठ केरल तक पहुँच गये और अनेकों सरदारों को जीत कर लाखों की सम्पत्ति लूट लाये। उनकी इस बहादुरी से इब्राहीम आदिलशाह बहुत प्रसन्न हुआ।

आदिलशाह के दरबार में शाहजी लगभग तीन साल रहे। इब्राहीम आदिलशाह सन् १६२७ ई० में मर गया और फिर बीजापुर के दरबार में हिन्दू सरदारों के विरुद्ध षड्यंत्र रचे जाने लगे। तभी यह खबर दक्षिण पहुँची कि दिल्ली का बादशाह शाहजहाँ निज़ामशाही को नष्ट करने आ रहा है। इधर मलिक अम्बर भी मर चुका था, इसलिए निज़ामशाह ने अपनी रक्षा के लिए शाहजी को बुलाया। अतः शाहजी फिर निज़ामशाह की नौकरी में चले गये, जहाँ वे लगभग दो ढाई बरस रहे।

लखूजी जाधवराव भी निज़ामशाही को बचाने की इच्छा से अपने पुराने मालिक के पास लौट आये। पर उनका मान करने के बजाय निज़ामशाह के दरबारियों ने लखूजी जाधवराव को उनके तीन पुत्रों समेत भरे दरबार में धोखे से मार डाला। मुगलों का मुकाबला करने के बजाय निज़ामशाह के सरदार आपस में ही लड़ने मरने लगे।

इसी समय शाहजी की धर्मपत्नी जीजाबाई एक बच्चे की माँ बनने जा रही थी। शाहजी ने उन्हें पूना में जुन्नर नगर के पास शिवनेरी नामक किले में रख दिया और उनकी रक्षा का प्रबन्ध करके स्वयं लड़ाई पर चल गये।

यहीं पर शक संवत् १५५१ की फाल्गुन बदी ३, (१९ फरवरी १६३०) की सायंकाल शिवाजी का जन्म हुआ।

किले की देवी का नाम शिवाई था। उसी पर से बालक का नाम शिवाजी रखा गया।

शिवाजी की जन्मतिथि के विषय में इतिहासज्ञों में मतभेद है। सर यदुनाथ सरकार १० अप्रैल १९२७ को शिवाजी का जन्मदिन मानते हैं। ये लोग १६३० के बजाय १६२७ को इसलिए अधिक प्रामाणिक मानते हैं कि अगर १६३० को सही मान लिया जाय तो शिवाजी के प्रारम्भिक कार्यों की संगति नहीं बैठती। शिवाजी ने सन् १६४५ में हिन्दवी स्वराज्य की शपथ ग्रहण की थी। वे कहते हैं कि क्या केवल पन्द्रह वर्षों का लड़का इतना बड़ा कार्य कर सकता है?

बाल्यकाल

आदिलशाह और निज़ामशाह के बर्ताव से ऊब कर शाहजी दिल्ली के मुगलों के पास चले गये। सन् १६३० ई० के अक्टूबर मास में वे मुगलों के सरदार बन गये। शाहजहाँ ने उनका स्वागत किया। उन्हें पाँच हजार सैनिकों का सेनापति बनाया गया। उनके बड़े बेटे संभाजी तथा चचेरे भाई मंबाजी एवं मालोजी को भी पद मिले। निज़ामशाह के इलाके को जीत कर मुग़ल साम्राज्य में जोड़ने का काम शाहजी को सौंपा गया।

पर मुगलों का भी भरोसा कहाँ था? उन्होंने निज़ामशाह के एक सरदार फतहखाँ को शाहजी की जागीर देकर उसे कठपुतली बना दिया। फतहखाँ ने अपने मालिक मुर्तज़ा

निज़ामशाह को कत्ल कर दिया और उसके खानदान के हुसैन नामक एक लड़के को निज़ाम बनाकर स्वयं राज्य चलाने लगा। इस निज़ाम के अधिकार में अब केवल राजधानी और उसके आसपास का थोड़ा-सा इलाका बच गया था।

मुगलों की इन चालों से शाहजी को बहुत बुरा लगा। उन्होंने निज़ामशाह के उत्तराधिकारियों में से एक छोटे बच्चे को अपने सरंक्षण में ले लिया और उसे मुर्तज़ा निज़ामशाह नाम देकर सिंहासनासीन करके उसके नाम से स्वयं राज्य चलाने लगे। मुगलों ने सोचा कि दोनों निज़ाम-शाहों को मिटा देना ही उचित होगा। अतः उन्होंने पहले दौलताबाद के किले को घेरा। एक विचित्र परिस्थिति पैदा हो गयी। किले के अन्दर एक निज़ामशाह था, उसे समाप्त करने के लिए महाबतखाँ अपनी भारी फौज के साथ प्रयत्न कर रहा था और दूसरी ओर शाहजी इस किले को अपने निज़ामशाह के लिए सुरक्षित रखने की दृष्टि से महाबतखाँ के साथ लड़ रहे थे। शाहजी की सहायता के लिए बीजापुर के आदिलशाह के वज़ीर खवासखाँ और मुरारराव आये थे। इससे शाहजी की प्रतिष्ठा और भी बढ़ गयी।

लेकिन शाहजी को हार खानी पड़ी। फतहखाँ हुसैन निज़ामशाह को लेकर मुगलों की शरण में आ गया। इस प्रकार लगभग डेढ़ सौ वर्षों की एक सत्ता का अन्त हो गया। फिर भी शाहजी ने अगले तीन वर्षों तक इस सत्ता को किसी तरह जीवित रखा।

शाहजी ने अपनी फौज में छः हजार की जगह बारह हजार सैनिक कर लिए और मुगलों द्वारा जीता गया काफी इलाका फिर से अपने अधिकार में कर लिया। जब मुगलों

ने देखा कि आदिलशाह भी शाहजी की मदद कर रहे हैं तो उन्होंने आदिलशाही को ही समाप्त करने का संकल्प किया और बीजापुर के परिंडा किले पर ख़ान ज़मान ने धावा बोल दिया। स्वयं महाबतखाँ और शाहज़ादा शुजा ख़ान ज़मान की मदद के लिए आये। पर शाहजी ने बीजापुर के पक्ष में लड़कर मुगलों को हरा दिया।

अपनी हार की ख़बर सुनकर शाहजहाँ तड़प उठा और वह स्वयं दौलताबाद जा पहुँचा। उसने एक चाल चली। उसने आदिलशाह को एक पत्र लिखकर धमकी दी कि, यदि तुम शाहजी की मदद करना बन्द न करोगे तो शाहजी के साथ तुम्हारा भी नाश हो जायगा। यह लालच भी दिया कि यदि तुम हमारी सहायता करोगे तो हम शाहजी की निज़ामशाही का आधा भाग तुम्हें दे देंगे।

इसका तत्काल प्रभाव पड़ा। बीजापुर और शाहजहाँ में संधि हो गयी। अब शाहजी के लिए कोई आशा नहीं रही। इसी काल में बीजापुर के वज़ीर खबासखाँ की, जो शाहजी का परम मित्र था, हत्या हो गयी और शाहजी के दूसरे हितैषी मुरार जगदेव को स्वयं मुहम्मद आदिलशाह ने कत्ल करवा डाला। इन घटनाओं से शाहजी बड़े दुःखी हुए। फिर भी अपनी पूरी शक्ति से वे मुगलों के साथ जूझते रहे।

आखिर जब वे अपने बाल-बच्चों समेत माहुली के किले में घिर गये तो हार कर उन्हें हथियार डाल देने पड़े। उन्होंने आखिरी निज़ामशाह मुर्तज़ा को मुगलों के हवाले कर दिया और संधि की शर्तों के अनुसार आदिलशाह की नौकरी स्वीकार कर ली। शाहजहाँ ने एक शर्त यह भी मनवायी कि आदिलशाह की नौकरी करते हुए शाहजी महाराष्ट्र में नहीं

रह सकते । उन्हें सुदूर दक्षिण जाना होगा। उसे डर था कि अगर वे यहीं रहे तो शायद फिर विद्रोह खड़ा हो जाय। शाहजी ने कर्नाटक में जाना स्वीकार किया। बीजापुर का सरदार रणदुल्लाखाँ उनका मित्र था। उसकी कोशिशों से शाहजी की जागीर पूर्ववत् बनी रही।

इस दौड़धूप और लड़ाई-भिड़ाई के काल में शिवाजी और उनकी माँ जीजाबाई के साथ शाहजी का सम्पर्क बना रहा। शाहजी की दूसरी पत्नी का नाम तुकाबाई मोहिते था जिनसे व्यंकोजी नाम का पुत्र हुआ था। व्यंकोजी के लिए उन्होंने कर्नाटक में बंगलूर की जागीर दी थी। दो पत्नियों के होते हुए भी शाहजी ने जीजाबाई और शिवाजी के प्रति उपेक्षा नहीं बरती। शिवाजी की शिक्षा-दीक्षा का भी वे ध्यान रखते रहे।

जीजाबाई ने भी शिवाजी की शिक्षा पर बहुत ध्यान दिया। वे उन्हें रामायण-महाभारत के वीर पुरुषों की कथाएँ सुनाया करतीं और उन जैसा वीर बनने की प्रेरणा दिया करती थीं।

शाहजी ने शिवाजी और जीजाबाई को पूना भेज दिया और उनकी देखभाल का उत्तरदायित्व अपने पुराने परिचित दादाजी कोंडदेव नामक एक वृद्ध को सौंपा। दादाजी कोंडदेव एक ओर शिवाजी के अभिभावक थे तो दूसरी ओर आदिलशाह के सूबेदार भी थे। हिन्दू धर्म एवं समाज के प्रति उनके मन में बड़ा अभिमान, आदर एवं प्रेम था। इसलिए शिवाजी की शिक्षा में उन्होंने इन बातों का विशेष ध्यान रखा। लिखना-पढ़ना, घुड़सवारी, शस्त्रास्त्र चलाना, कुश्ती, पटा आदि की शिक्षा उन्होंने शिवाजी को दी। जागीर का

प्रबन्ध, न्याय और अन्य कार्य करते समय वे शिवाजी को अपने साथ रखते थे।

जब शिवाजी दस वर्ष के हुए तो उनके विवाह की तैयारियां हुईं। शिवाजी का प्रथम विवाह फलटण के नाईक निंबालकर की पुत्री सईबाई के साथ धूमधाम से सम्पन्न हुआ। शाहजी बंगलूर में लड़ाइयों में फँसे थे, इसलिए विवाह में उपस्थित नहीं हो सके। इन्हीं सईबाई के बेटे छत्रपति संभाजी हुए।

कुल मिलाकर शिवाजी ने आठ विवाह किये। उनकी पत्नियों के नाम इस प्रकार हैं :—

(१) सईबाई (निंबालकर), (२) सगुणाबाई (शिर्के), (३) सोयराबाई (शिर्के), (४) पुतलाबाई (मोहिते), (५) लक्ष्मीबाई (विचारे), (६) सकवारबाई (गायकवाड), (७) काशीबाई (जाधव) और (८) गुणवंताबाई (इंगले)।

शिवाजी ने जब अन्तिम विवाह किया तब उनकी आयु केवल सत्ताईस बरस की थी। राज्याभिषेक के समय उनकी चार रानियां जीवित थीं। सईबाई सन् १६५९ में स्वर्ग सिधारीं। अतः राजाराम की मां सोयराबाई ही पटरानी बनीं, जिन्हें बाद में संभाजी ने मार डाला। शिवाजी की मृत्यु के दो ढाई महीने के पश्चात्, उनकी एक धर्मपत्नी, पुतलाबाई सती हुईं। शिवाजी को संभाजी और राजाराम दो पुत्र तथा छः कन्याएँ हुईं।

स्वराज्य का श्रीगणेश

राजा शाहजी कर्नाटक की लड़ाइयों में इतने फंसे थे कि वे पूना नहीं जा सके। इसलिए उन्होंने शिवाजी और जीजाबाई को बंगलूर बुलवा लिया। जब वे वहां पहुँचे तो शाहजी ने मोहिते कुल की लड़की सोयेराबाई के साथ अपने बेटे का एक और ब्याह रचाया। बंगलूर में कुछ दिन रहकर शिवाजी और जीजाबाई शाहजी के साथ बीजापुर गये। वहां का दरबार, लोगों की बेबसी आदि देखकर शिवाजी को बहुत दुःख हुआ और क्रोध भी आया। दंतकथाएं बताती हैं कि बालक शिवाजी ने दरबार में सुलतान के सामने मस्तक झुकाने से इन्कार कर दिया और गाय की हत्या करने वाले एक कसाई का हाथ सरे-राह काट डाला। इससे उनका बीजापुर में रहना भय से खाली नहीं रहा। इसलिए शाहजी ने उन्हें वापस पूना भेज दिया।

यहां यह बात स्मरण रखने योग्य है कि शाहजी ने शिवाजी को एक जागीरदार के अवयस्क बेटे के रूप में नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र राजा का पद देकर पूना भेजा था। उनके

साथ पेशवा अर्थात् प्रधान मंत्री, मजमूदार (अर्थात् लेखा-निरीक्षक और वसूल-अधिकारी), सबनीस (या सेना-लेखक और दफ्तरदार), दबीर (निजी सचिव) आदि भेजे गये थे। इससे यह स्पष्ट है कि शाहजी यह चाहते थे कि शिवाजी किसी के नौकर न रहकर स्वतंत्र राजा बनें।

यही नहीं, शिवाजी का अपना अलग झंडा भी था जो आगे चलकर, सम्भवत: समर्थ रामदास के कहने से, भगवा कर दिया गया। शिवाजी ने इन्हीं दिनों अपनी अलग राजमुद्रा भी शुरु की थी। यह मुद्रा अष्टकोण थी और उसमें यह लिखा था—

प्रतिपच्चन्द्रलेखेव वर्धिष्णुर्विश्ववन्दिता।
शाहसूनोः शिवस्यैषा मुद्रा भद्राय राजते॥

अर्थात् प्रतिपदा के चन्द्र के समान क्रमशः बढ़ने वाली, विश्व के लिए वंदनीय शाहजी के पुत्र शिवाजी की यह मुद्रा कल्याण के लिए शोभा देती है।*

इस राजमुद्रा की एक विशेषता यह है कि वह संस्कृत भाषा एवं देवनागरी लिपि में थी। उन दिनों सभी राजमुद्राएँ फ़ारसी में होती थीं। स्वयं शाहजी तथा जीजाबाई की मुद्राएँ फ़ारसी में थीं। पर शिवाजी ने विदेशी भाषा एवं लिपि की गुलामी से अपने को मुक्त कर दिया और मानो

---

* नये महाराष्ट्र की सरकार ने भी अपनी स्थापना के उपलक्ष्य में ऐसी ही मुद्रा प्रचारित की जिस पर लिखा था—

प्रतिपच्चन्द्रलेखेव वर्धिष्णुर्विश्ववन्दिता।
महाराष्ट्रस्य राज्यस्य मुद्रा भद्राय राजते॥

इस मुद्रा के एक ओर महाराष्ट्र में प्रचलित लामणदिवा नामक दीपक था और दूसरी ओर भारत का अशोक चिह्न—तीन सिंहों वाला।

अपनी मुद्रा के द्वारा ही नये भारतीय साम्राज्य की नींव डाली।

पूना वापस लौटते ही शिवाजी अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए योग्य साथियों की खोज में निकल पड़े। पूना के आस-पास के पश्चिमी प्रदेश को 'मावळ' कहा जाता है और वहाँ के निवासी मावळे कहलाते हैं। ठिगने मगर हट्टे-कट्टे, सरल किन्तु शूर, कष्टसहिष्णु पर अन्याय का मुकाबला करने वाले मावळों का आज भी भारतीय सेना में एक विशेष स्थान है।

शिवाजी अपने राजत्व के अभिमान को भुलाकर इन गरीबों से मिलने लगे, उन्हें अपने हिन्दवी स्वराज्य की कल्पना समझाने लगे और इस प्रकार उन मिट्टी के पुत्रों को फ़ौलादी सैनिक बनाने लगे। मावलों के लिए यह एक नई और अनोखी बात थी कि उनका राजा उनके बीच आकर रहता है, उनके साथ जंगलों पहाड़ों में घूमता है और उन्हें अपनी बराबरी का समझता है। इस अनुभव के कारण उन्हें इतना आनन्द हुआ कि वे शिवाजी की खातिर अपने जीवन का बलिदान करने को सन्नद्ध हो गये।

जंगलों-पहाड़ों में अपने समवयस्क मावलों के साथ घूमने से शिवाजी का स्वास्थ्य सुपुष्ट एवं शरीर फौलादी हो गया। उनमें कष्ट-सहिष्णुता आ गयी और जिस प्रदेश एवं जनता पर उन्हें राज्य करना था उनका प्रत्यक्ष परिचय एवं ज्ञान भी उन्हें प्राप्त हो गया। उनके साथियों में बाजी पासलकर जैसे बूढ़े भी थे, जिन्हें नये स्वराज्य की कल्पना ने मोह लिया था। उनके अन्य साथियों में तान्हाजी मालुसरे, सूर्याजी मालुसरे, येसाजी कंक, वाघोजी तुपे, कावजी कोंढाळकर,

जिऊ महाळा, कान्होजी जेधे, सूर्याजी काकड़े, बाजी जेधे, त्र्यंबक सोनदेव, डबीर, वापूजी मुद्गल, देशपांडे के बेटे नारोबा, चिमणाजी एवं बालाजी, नरस प्रभु गुप्ते का बेटा दादाजी आदि सभी वर्गों के जवान थे। कई छोटे-बड़े दुर्गाधीश भी उनके वशवर्ती हो गये। इन सभी कार्यों में दादाजी कोंडदेव का बहुत हाथ रहता था।

शिवाजी की इन गति-विधियों का पता बीजापुर के सुलतान तथा दरबारियों को लगता रहता था। पर शुरु-शुरु में उन्होंने इन्हें कोई महत्त्व नहीं दिया। इसके विपरीत गरीब मावलों के साथ शिवाजी के हिल-मिल जाने पर उन्हें हँसी आती थी और वे उन्हें 'कंगालों का राजा' कहते थे। कौन जानता था कि यहीं 'कंगालों का राजा' आगे चलकर सचमुच छत्रपति बन जायगा।

पूना से दक्षिण में लगभग ५० मील की दूरी पर रोहिरेश्वर नामक अत्यन्त पवित्र, एवं प्राचीन शिवमंदिर है। इसी मंदिर में छत्रपति शिवाजी महाराज और उनके साथियों ने स्वराज्य प्राप्त करने की शपथें ग्रहण कीं, साथ ही उन्होंने यह भी शपथ ली कि वे सब एक दूसरे को किसी भी दशा में छोड़ेंगे नहीं। शिवाजी या इनके पूर्वजों ने इन लोगों को जो ज़मीनें इनाम में दी थीं उन्हें इन लोगों के नाम चढ़ाये रखने की प्रतिज्ञाएँ भी इसी रोहिरेश्वर की सन्निधि में की गयीं।

अपनी प्रतिज्ञा पर शिवाजी हमेशा अटल रहे। इसका एक प्रमाण यहाँ उपस्थित करने योग्य है। जब शिवाजी ने रोहिडा का किला जीत लिया और राजगढ़ बनवाया तो उसके लिए रोहिडा घाटी के देशपांडे दादाजी नरस प्रभु को बीजापुर की सत्ता ने दोषी ठहराया और उन्हें यह धमकी दी कि सरकारी

थाने में हाज़िर हो जाओ, वरना बीजापुर ले जाकर तुम्हारी गर्दन रेत दी जायगी।" इससे दादाजी के पिता नरसी बहुत घबराये। दादाजी ने सारी बातें शिवाजी को लिख भेजीं। इस पर शिवाजी ने नरसी को पत्र लिख कर आश्वासन दिया कि आप चिंता न करें, बल्कि बादशाह का आदेश अपने साथ लेकर हमारे पास आ जायँ, हम आपकी पूरी रक्षा करेंगे। यह पत्र शिवाजी की स्वराज्य-नीति को समझने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने लिखा था, "बादशाह के साथ आप और हम विश्वासघाती नहीं हैं। श्री रोहिरेश्वर तो आपकी घाटी के आदि कुलदेवता एवं आपकी पहाड़ियों के स्वयंभू देवता हैं। उन्होंने ही हमें सफलता प्रदान की और आगे चलकर हिन्दवी स्वराज्य की प्रस्थापना के रूप में हमारी और आपकी अभिलाषाएँ वे ही पूरी करेंगे। दादाजी कोंडदेव के समक्ष आपने और हमने भगवान् के चरणों में शपथें ली हैं। उन पर हम अटल हैं। हम या हमारे वंशज उसमें किसी प्रकार का खण्ड नहीं होने देंगे। भगवान् की यह इच्छा है कि इस (हिन्दवी) राज्य का निर्माण अवश्य हो। आप अपने पिताजी को वे सारी बातें समझा दें और यहां आ जायँ।" (सन् १६४५)। इस पत्र से नरसी बाबा को धीरज बंधा और वे पहले की तरह शिवाजी की सहायता करते रहे।

शिवाजी सदा अन्याय-अत्याचार के विरोध में खड़े रहे। इसका एक प्रमाण उस समय मिलता है जब उन्होंने अपने जीवन का १६वाँ वर्ष भी पूरा नहीं किया था। राँझे गाँव के बाबाजी गुजर नामक पटेल ने किसी स्त्री पर बलात्कार किया। जब शिवाजी को इसकी खबर लगी तो उन्होंने अपने

सिपाहियों को भेज कर उस पटेल को पकड़ लाने का हुक्म दिया। जब वह लाया गया तो उसके अपराध की जाँच की गयी। फिर उसके अधिकारों को समाप्त कर दिया गया और उसके हाथ-पाँव काट डालने का दण्ड दिया गया।

शिवाजी ने यह निश्चय किया कि जब तक अपनी सामर्थ्य नहीं बढ़ती, तब तक बीजापुर के सुलतान के साथ खुली शत्रुता मोल न ली जाय। परन्तु चुपचाप बैठे रहने से सामर्थ्य थोड़े ही बढ़ती है? इसलिए उन्होंने सोचा कि जिन किलों की ओर सुलतान का ध्यान नहीं है, जो यों ही व्यर्थ पड़े हैं, उन पर अधिकार कर लिया जाय और उनमें उचित सुधार-मरम्मत करके उन्हें स्वराज्य की रक्षा के लिए सुरक्षित बनाया जाय।

इस दृष्टि से जब उन्होंने देखा तो पूना से बहुत दूर दुर्लक्षित स्थिति में पड़े हुए तोरणा नामक किले पर उनकी नजर पड़ी। यह किला बड़ा ही दृढ एवं दुर्गम था। किन्तु उसका कुछ हिस्सा टूटी-फूटी दशा में था। अतः सन् १६४५ ई० में अपने साथियों समेत उस किले पर धावा बोल दिया और बिना किसी प्रतिकार के वह किला उन्हें मिल गया। इस प्रकार स्वराज्य का श्रीगणेश हो गया।

जब उन्होंने तोरणा की मरम्मत शुरु की तो भगवान् की कृपा से एक टूटी हुई दीवार में उन्हें बहुत-सा धन गड़ा हुआ मिल गया। कुछ लोगों का कथन है कि यह धन दीवार में गड़ा हुआ नहीं था, बल्कि किले पर बीजापुर के सुलतान का ही ख़जाना था जो शिवाजी के हाथ लगा था। यह धन

लगभग दो लाख होन* था। इससे शिवाजी की आर्थिक चिन्ता दूर हो गयी और अपने काम को आगे बढ़ाने में उन्हें उत्साह मिला।

तोरणा से पूर्व पाँच मील की दूरी पर एक बड़ा कठिन पहाड़ था, जिसे मुरुंबदेव का पहाड़ कहा जाता था। एक प्रतिभावान् कलाकार की तरह शिवाजी ने उस अनघड़ पहाड़ में एक भव्य किले के दर्शन किये और तोरणा से मिले धन का उपयोग करके उन्होंने वहां पर एक नया किला बनवाया, जिसका नाम उन्होंने 'राजगढ़' रखा।

इसके बाद उन्हें रोहिड़ा और कुवारगढ़ भी मिल गये। वे एक के बाद दूसरा किला जीतते गए और उनकी मरम्मत करके रक्षा का प्रबन्ध करते गए। यहां पर यह स्मरण रखना होगा कि एक किले पर अधिकार करने का प्रयोजन था उसके आस-पास के दस-बीस मील के प्रदेश पर अपने प्रभुत्व को दृढ बनाना। शिवाजी महाराज इन पहाड़ों और किलों में स्वयं घूमते थे। इसलिए उन्हें जोड़ने वाली छिपी पगडंडियों से वे अच्छी तरह परिचित थे। आगे चलकर इस बात से उन्हें बड़ा लाभ हुआ। जब वे किसी भारी मुस्लिम सेना द्वारा एक किले में घिर जाते तो वे चुपके से वहां से खिसक कर किसी दूरस्थ मजबूत गढ़ पर पहुँच जाते थे और उस सेना को चारों ओर से घेर कर उसका दाना-पानी तोड़ देते थे। इस प्रकार प्रदेश से घनिष्ठ परिचय होने के कारण वे कई बार अपनी रक्षा कर सके।

---

* 'होन' एक स्वर्णमुद्रा थी, जिसका मूल्य लगभग साढ़े तीन रुपये के बराबर था।

विद्रोह का परिणाम

यह संभव नहीं था कि शिवाजी एक के बाद दूसरा किला जीतते जायँ, और बादशाह को खबर भी न लगे। जैसा कि भारत के इतिहास में पहले से चलता आया था, यह खबर किसी बाहरी नहीं बल्कि घर के भेदियों—मराठा जागीरदारों ने ही बादशाह तक पहुँचायी, जो शिवाजी के उत्कर्ष से जलते थे। प्रारम्भ में बीजापुर की सरकार ने शिवाजी के विरुद्ध की जाने वाली शिकायतों पर ध्यान नहीं दिया। उसने सोचा कि यह उनका बचपना है, जो दो-चार रोज़ चलकर समाप्त हो जायगा। परन्तु जब उसने देखा कि शिवाजी का विद्रोह बढ़ता ही जा रहा है, तब उसने उन्हें दबाने के प्रयत्न शुरु किये।

दादाजी कोंडदेव बीजापुर के सुलतान के भी प्रतिनिधि थे; इसलिए उनके जीते जी शिवाजी को कोई विशेष कष्ट न हो सका। जब ७ मार्च १६४७ को दादाजी का देहान्त हो गया तब शिवाजी की सम्पत्ति के कर्मचारी एवं बीजापुर की सत्ता के प्रतिनिधि का स्थान शिवाजी ने अपने ऊपर ले लिया

और उस अधिकार का उपयोग करके अपने राज्य का विस्तार करने में वे जुट गये।

अब तक शिवाजी ने जो किले जीते थे, उनके विषय में बीजापुर के सुलतान को कोई विशेष रुचि नहीं थी। अब शिवाजी ने पूना से १४ मील दूर कोंडाणा (सिंहगढ़) को अपने अधिकार में लाने की दृष्टि से पग उठाने शुरु किये। उन दिनों कोंडाणा का दुर्गाधीश सिद्दी अम्बर नामक एक मुसलमान था। उस इलाके के देशपांडे बापूजी मुद्गल नर्हेकर, जो शिवाजी के गहरे मित्र थे, सिद्दी अम्बर के भी मित्र थे। उन्होंने सिद्दी अम्बर को फुसलाकर बिना किसी लड़ाई-झगड़े के इस किले पर (१६४७ ई० में) अधिकार कर लिया। इससे शिवाजी के राज्य में एक महत्त्वपूर्ण वृद्धि हो गयी, पर इसके साथ ही बीजापुर की शत्रुता भी शिवाजी को मोल लेनी पड़ी।

सिंहगढ़ पर कब्जा हो जाने के बाद शिवाजी ने पुरंधर नामक किला भी १९ अक्टूबर १६४७ को अपने अधिकार में ले लिया। दीपावली के उत्सव से लाभ उठाकर वे किले में घुस गये और किलेदार के तीनों बेटों को, जो आपस में झगड़ रहे थे, कैद कर लिया। चौथे दिन उन्होंने उनको छोड़ दिया और उन्हें चांबली नामक गाँव तथा कीमती वस्त्र आदि प्रदान करके प्रसन्न कर दिया।

कृष्णा नदी के उद्गम अर्थात् महाबलेश्वर पहाड़ के आस-पास का प्रदेश जावली घाटी के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ की भूमि बड़ी उपजाऊ और लोग लड़ाके हैं। स्वराज्य की रक्षा के लिए इस प्रदेश पर अधिकार करना कितना आवश्यक है, यह शिवाजी ने अच्छी तरह जान लिया था। पर उन दिनों वहाँ दौलतराव चन्द्रराव मोरे का राज्य था

और मोरे बड़ा शक्तिसम्पन्न था। उससे लोहा लेने की सामर्थ्य उस समय शिवाजी में नहीं थी। इसलिए वे अनुकूल अवसर की राह देखते रहे। अन्तत: जब दौलतराव की मृत्यु हो गयी तो उसकी विधवा एवं सन्तानहीन पत्नी की सहायता के लिए शिवाजी वहाँ पहुँच गये और यशवंतराव मोरे नामक पुरुष को उसका दत्तक पुत्र बनाया। इससे उस प्रदेश पर अप्रत्यक्ष रूप से शिवाजी का अधिकार हो गया। वास्तव में यह शिवाजी का आदिलशाह के अधिकार में हस्तक्षेप था।

आदिलशाह को शाहजी पर कभी भी पूरा भरोसा न था। बीच-बीच में शाहजी को लाञ्छित एवं निर्बल करने के उपाय वह करता ही रहता था। ता. १-८-१६४४ के एक फ़र्मान में कहा गया था कि—"शाहजी भोंसले को हमारे दरबार से अप्रतिष्ठित करके निकाल दिया गया है और उसके कर्मचारी दादाजी कोंडदेव के बन्दोबस्त के लिए, जिसने कोंडाणा के इलाके में गड़बड़ मचायी है, खंडोजी व बाजी घोरपड़े को सेना-सहित भेजा गया है।" पर इससे शिवाजी नहीं दबे थे और उन्होंने उक्त घोरपड़े सरदारों को हराकर वापस कर दिया था।

इसके बाद आदिलशाह ने शाहजी के साथ ऊपरी तौर पर प्रेम का व्यवहार शुरु किया। उन्हें अपना 'फ़र्ज़न्द' अर्थात् पुत्र भी कहा। पर इसका कोई परिणाम नहीं हुआ। शिवाजी का विद्रोह बढ़ता ही गया। इससे लाभ उठाकर मुसलमान सरदारों ने शाहजी के विरुद्ध शिकायतें करनी शुरु की कि यह छिपे तौर पर बेटे की मदद करता रहता है। यही नहीं, दक्षिण भारत के हिन्दू राजाओं की भी सहायता करता है तथा स्वयं स्वतन्त्र राजा बनने की चेष्टा में है। असल बात

यह थी कि शाहजी बीजापुर की नौकरी को छोड़कर गोलकुंडे की कुतुबशाही में जाना चाहते थे। यह खबर स्वयं कुतुबशाह ने आदिलशाह को दी थी। इससे आदिलशाह उनसे नाराज़ हो गया और उसने अपने सरदार मुस्तफ़ाखाँ के हाथों विश्वासघात से दक्षिण भारत के जिंजी किले के पास शाहजी को कैद करवा लिया। मुस्तफ़ाखाँ ने मित्रता का बहाना करके एक दिन पिछली रात को जब शाहजी अपनी सेना समेत आराम की नींद सो रहे थे, अचानक उन पर धावा बोल दिया और २५ जुलाई १६४८ को उन्हें गिरफ्तार कर लिया। मगर उसके बाद थोड़े ही दिनों के अन्दर मुस्तफ़ाखाँ की मृत्यु हो गयी। तब शाहजी के पांवों में बेड़ियां डाली गयीं और कर्नाटक में बीजापुर सरकार के प्रतिनिधि अफज़लखां द्वारा वे बीजापुर लाये गये। इस बीच कई महीने उन्हें कर्नाटक में ही बन्दी के रूप में रहना पड़ा।

इसके साथ ही आदिलशाह ने संभाजी और शिवाजी को पकड़वाने के भी यत्न किए, जो सफल नहीं हुए। यहां यह बात स्मरण रहे कि सन् १६४६ ई० में आदिलशाह सख्त बीमार हो गया था और अपने जीवन के अगले, और अंतिम दस वर्ष उसने रोगी दशा में बिताये। इसलिए इन दिनों जो कुछ कार्रवाई हुई, उसके सरदारों द्वारा ही हुई। शिवाजी के लिए अपना राज्य बढ़ाने में यह स्थिति बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई। इसके बाद शिवाजी ने एक ऐसी चाल चली कि जिससे सुलतान को शाहजी की रिहाई का विचार करना पड़ा।

उन दिनों मुगल सल्तनत का दक्षिणी भारत का सूबेदार शाहज़ादा मुराद अहमदाबाद में रहता था। उसके साथ

शिवाजी ने पत्र-व्यवहार शुरु किया और मिलने की इच्छा प्रकट की। इस लिखा-पढ़ी की खबर जब बीजापुर पहुँची तो आदिलशाह और उसके सरदार डर गए और लगभग दस महीने के कारावास के बाद ता० १६ मई १६४९ के दिन शाहजी को प्रतिष्ठा के साथ छोड़ दिया गया। आदिलशाह ने उन्हें फिर से ऊँची पोशाक, उनकी जागीर एवं 'महाराज' की उपाधि प्रदान की। पर साथ ही एक शर्त भी लगायी और वह यह कि शाहजी अपने तीन किले सुलतान को लौटा दें। इन किलों के नाम थे, कोंडाणा, बंगलूर तथा कंदर्पी।

बंगलूर एवं कंदर्पी शाहजी को आदिलशाही नौकरी के पुरस्कार में मिले थे, इसलिए उनको लौटाने में दुःख या अपमान नहीं था। पर कोंडाणा की बात अलग थी। शिवाजी ने अपनी चतुराई एवं बहादुरी से उसे अपने अधिकार में लिया था। इसलिए उसे चुपचाप सुलतान के हवाले करते समय उन्हें बड़ा दुःख हुआ। किन्तु पिता की रिहाई के लिए जितना भी त्याग करना पड़े कम ही था।

इतिहासज्ञों का कहना है कि बीजापुर के सुलतान को उसके कई परामर्शदाताओं ने यह सलाह दी कि पुत्र के अपराध के लिए पिता को दण्ड देना कुरानशरीफ की शिक्षा के विरुद्ध है। जो हो, शाहजी की रिहाई हो गयी और उस कांड से शिवाजी को शिक्षा मिली कि अभी बहुत तैयारी की आवश्यकता है। इस घटना के बाद पांच-छः वर्ष तक वे अपनी शक्ति बढ़ाने में ही लगे रहे। शान्ति की आवश्यकता इसलिए भी थी कि सुलतान ने शाहजी को कर्नाटक भेजने के बजाय बीजापुर में ही रख लिया था, जिससे यह डर हमेशा बना रहा कि न जाने कब वह उन्हें फिर से कैद कर ले।

घरेलू शत्रुओं पर विजय

शिवाजी महाराज ने जब देखा कि कुछ समय तक नया प्रदेश या किले जीतने का काम स्थगित करना होगा, तो उन्होंने अपना ध्यान अपनी प्रजा के सुख की ओर मोड़ा। दादाजी कोंडदेव ने खेती के विकास की तरफ बहुत ध्यान दिया था। उन्होंने प्रत्येक गाँव में जाकर भूमि की पैमाइश करवायी; उसकी श्रेणी निश्चित की और उसकी फसल के अनुपात में भूमि-कर का निश्चय किया। जहां पर जमीन परती पड़ी थी, उसे जोता गया और जहां पर पानी का प्रबन्ध हो सकता था, वहां फलों के बाग लगवाये। उनका लगाया हुआ एक आम का बाग पूना से कुछ दूर शिवापुर (यह गाँव भी दादाजी ने शिवाजी के नाम पर बसाया था) गाँव के पास आज भी मौजूद है। उनकी इस शिक्षा पर शिवाजी ने भी आचरण करना शुरु किया। पहाड़ी प्रदेश होने के कारण महाराष्ट्र में बड़ी नदियां या तालाब नहीं हैं। फिर भी जो छोटी नदियां या नाले मौजूद थे उनमें बाँध बना कर शिवाजी ने सिंचाई का अच्छा प्रबन्ध करवाया।

जनता को उन्होंने प्रोत्साहित किया कि वह आम, इमली, नीम, अनार जैसे उपयोगी पेड़ लगाये। इसके लिए किसानों को जमीनें दी जाती थीं। पेड़ों से जो प्राप्ति होती थी उसका एक तिहाई भाग राजस्व के तौर पर सरकार को देना होता था। इससे बेकार जमीन में उत्पादन होने लगा, किसानों की अवस्था सुधरी और शिवाजी का कोष भी भरपूर रहने लगा।

शिवाजी महाराज गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक थे। उनके स्वातंत्र्य-संपादन के कार्य में आरम्भ से ही ब्राह्मणों ने बड़े उत्साह से भाग लिया था। परन्तु यदि कोई ब्राह्मण अन्याय करता तो महाराज उसे दण्ड दिए बिना नहीं छोड़ते थे। इसी तरह गौओं की रक्षा का भी भार शिवाजी ने अपने ऊपर उठाया। मुसलमानों के राज्य में गौओं-बछड़ों की अंधाधुँध हत्या होती थी, जिससे खेती पर बुरा प्रभाव पड़ता था। महाराज ने इस पर विशेष ध्यान दिया और गो-हत्या बन्द करा दी।

शिवाजी ने दादाजी कोंडदेव की न्याय-परम्परा आगे चलायी और इतना शुद्ध न्याय करना शुरु किया कि लोग यह अच्छी तरह समझ गए कि शिवाजी के राज्य में अन्याय कभी नहीं होगा। इससे स्वराज्य के प्रति लोगों में निष्ठा बढ़ी।

जैसा पहले कहा जा चुका है, जावली पर शिवाजी ने यशवंतराय मोरे को नियुक्त किया था। कुछ दिनों तक तो यशवंतराव शिवाजी का विश्वस्त बना रहा। परन्तु चूँकि यशवंतराव शिवाजी द्वारा गद्दी पर आया था, इसलिए आदिलशाह ने उसे पद-च्युत करने के लिए अफजलखाँ को

सन् १६४९ में सैन्य के साथ भेजा। मोटी बुद्धि के यशवंतराव ने सोचा कि शिवाज़ी तो कल का छोकरा है, वह सदियों पुरानी आदिलशाही के सामने भला कैसे टिक सकता है? अतः उसने शिवाजी की प्रजा को सताना शुरु किया। उसका राज्य काफी बड़ा था और उसने अपनी सैनिक-सामर्थ्य भी काफी बढ़ा ली थी, इसलिए उससे शत्रुता न करने की ओर ही शिवाजी का झुकाव था। संभवतः वे सोचते हों कि किसी दिन उसकी बुद्धि ठिकाने आयेगी ही और स्वराज्य के निर्माण में उससे सहायता मिलेगी।

पर उनकी यह आशा दुराशा ही सिद्ध हुई। वह अपने को राजा कहने लगा। जब उसके अत्याचारों की अति हो गयी तो एक दिन शिवाजी ने उसे डांटकर पत्र लिखा :—

"तुम अपने को राजा कहलाते हो। राजा तो हम हैं। हमें भगवान् शिव ने यह राज दिया है। अतः तुम अपने को राजा कहलाना बन्द करो और अपनी जागीर का प्रबन्ध देखते हुए हमारी नौकरी करो। यदि ऐसा नहीं हुआ तो जावली का राज जब्त करके तुम्हें गिरफ्तार कर लिया जायगा।"

इस पर उपहास से हँसकर यशवंतराव मोरे ने शिवाजी को जवाब दिया :—

"तुम राजा हो? तुम तो कल राजा बने हो। किसने बनाया तुम्हें राजा? किसने दिया तुम्हें राज्य? केवल अपने घर पर अपने को राजा कहलवाने से कोई राजा नहीं बनता! तुम्हें कौन राजा मानता है? तुम जावली आने की धमकी देते हो। हिम्मत हो तो ज़रुर आ जाओ। कल आने वाले हो तो आज ही आ जाओ। जावली की जाली में फँसोगे,

तब लेने के देने पड़ जायेंगे। हम कोंकण के राजा हैं। हमारा राजा श्रीमहाबलेश्वर है। उसकी कृपा से हम पीढ़ियों से राज्य करते आये हैं।......आना चाहो तो अवश्य आ जाओ। तुम्हारे स्वागत के लिए हमारी सेना और गोला बारूद तैयार है।"

शिवाजी ने जावली के इलाके पर धावा बोल दिया। साथ ही उन्होंने अपने सचिव रघुनाथ पंत को संधि की बातचीत के लिए यशवंतराव के पास भेजा। पर यशवंतराव किसी भी शर्त पर संधि के लिए तैयार नहीं हुआ। तब शिवाजी की सेना ने जावली को चारों ओर से घेर लिया। पंद्रह-बीस दिन में मोरे की पर्याप्त सेना का संहार हो गया। उसका प्रधान-मन्त्री संभाजी कावजी के हाथों मारा गया। बची-खुची सेना भी तितर-बितर हो गयी और यशवंतराव भी अपनी जान बचाकर रायगढ़ में जाकर छिप गया।

जावली की लड़ाई में शिवाजी को एक वीररत्न प्राप्त हुआ। उसका नाम था मुरारबाजी देशपांडे, जो बाजीप्रभु के नाम से आगे चलकर प्रसिद्ध हुआ।

कब्ज़ा हो जाने के बाद स्वयं शिवाजी जावली में ढाई महीने तक रहे और उन्होंने अपनी नई प्रजा के कल्याण का अच्छा प्रवन्ध किया। तब वे यशवंतराव को ठिकाने लगाने के लिए रायगढ़ की ओर चले। रायगढ़ का किला बहुत ही दृढ और कठिन था। तीन मास तक शिवाजी उसे घेरे रहे। आखिर यशवंतराव मोरे को हथियार डाल देने पड़े। किला भी मई १६५६ में शिवाजी के अधिकार में आ गया।

शिवाजी चाहते थे कि यशवंतराव उनके सहयोगी के रूप में जावली का अधिकारी बना रहे। इसलिए उन्होंने उसे

बड़ी इज्ज़त से रखा और अपने साथ उसे पूना ले आये। परन्तु वह आस्तीन का साँप निकला। उसने शिवाजी के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा तथा आदिलशाह और मुधोल के बाजी घोरपड़े के साथ पत्र-व्यवहार किया। शिवाजी के गुप्तचरों ने उसके कुछ पत्र बीच में ही पकड़ लिये। उनसे पता चला कि वह भाग निकलना चाहता था। तब महाराज ने उसे अपराधी प्रमाणित करके उसकी गर्दन कटवा दी। उसके साथ उसके दो लड़कों बाजी एवं कृष्णाजी को भी मृत्युदण्ड दिया।

इसके बाद शिवाजी ने जावली का अलग प्रान्त बनाया और उस पर कृष्णाजी बाबाजी को सूबेदार तथा विरो राम को मजूमदार नियुक्त किया। इसी प्रदेश में महाबलेश्वर के समीप मोरप्या (बहुरूपिया) नामक महत्त्वपूर्ण पहाड़ पर उन्होंने प्रतापगढ़ नाम का किला बनवाया। चारों ओर दुर्गम पहाड़ों द्वारा घिरा हुआ होने से उसका सामरिक महत्त्व बहुत था। इसी किले पर उन्होंने अपनी इष्टदेवी भवानी की स्थापना की।*

जावली का प्रदेश पश्चिमी सागर (अरब सागर) तक फैला हुआ था। अतः जावली पर अधिकार हो जाने से शिवाजी का राज्य समुद्र तट तक पहुँच गया और स्वाभाविक रूप से पुर्तगाली, सिद्दी (हब्शी) एवं अंगरेजों के साथ उनका सम्बन्ध आ गया। फिर इन सत्ताओं का मुकाबला करने के लिए उन्हें भी अपनी जलसेना का निर्माण करना पड़ा।

*इसी किले पर छत्रपति शिवाजी की कांस्य-मूर्ति का उद्घाटन प्रधान-मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा १६५६ में सम्पन्न हुआ था।

मुगलों से संघर्ष

इसी बीच दस वर्षों से रोगशय्या पर पड़ा सुलतान मुहम्मद आदिलशाह ४ नवम्बर १६५६ को इस संसार का परित्याग कर गया। राजकाज सुलतान की बेगम 'बड़ी साहबा' अपने बेटे अली के नाम से देखने लगी। यह खबर पाते ही औरंगज़ेब की महत्त्वाकांक्षा फिर से प्रबल हो उठी। बीजापुर एवं गोलकुण्डा की सल्तनतों को जीतकर अपने साम्राज्य में मिलाने की कोशिशें उसने पहले भी कई बार की थीं। पर अब तक उसे पूरी सफलता नहीं मिल पायी थी। अब उसे लगा कि बीजापुर को खत्म कर डालने के लिए यह अच्छा अवसर है।

उसने बीजापुर के बिदर स्थित क़िले को घेर लिया। औरंगज़ेब के पास बहुत बड़ी सेना थी, इसलिए चार-पांच महीनों में ही उसने वह क़िला २९ मार्च सन् १६५७ को जीत लिया। उसके बाद तीन महीने के परिश्रम से उसने कल्याणी का क़िला भी जीत लिया।

बीजापुर वालों ने देखा कि अगर औरंगज़ेब इसी तेज़ी से आगे बढ़ता जायगा तो वह शीघ्र ही सारे राज्य पर अधिकार कर लेगा। अतः उन्होंने इसी में कुशलता समझी कि औरंगज़ेब की शर्तों पर उससे सन्धि कर ली जाय। इसके अनुसार उन्होंने औरंगज़ेब को बिदर, कल्याणी एवं परिंडा के क़िले, निज़ामशाही कोंकण के क़िले, वांगी परगना तथा एक करोड़ रुपये देने का वायदा करके उससे संधि कर ली।

तभी शाहजहां के बीमार होने की खबर औरंगज़ेब को मिली। वह सन् १६५८ के जनवरी महीने में आगरा की ओर चल पड़ा। दिल्ली के तख़्त के सामने बीजापुर गोलकुंडे की रियासतें नगण्य थीं। अतः उसने बीजापुर वालों से मित्रता करने का निश्चय किया। उसने सारे क़िले सुलतान को लौटा दिये और एक करोड़ के जुर्माने में ३० लाख रुपये की छूट दे दी। पर साथ ही उसने बीजापुर वालों को सचेत किया कि—"शिवाजी पर कड़ी निगरानी रखो। तुम्हारे जो क़िले उसने हड़प लिये हैं उन्हें वापस ले लो। अगर तुम उसे पूरी तरह ख़त्म करना न चाहो तो उसके बाप की तरह उसे भी कर्नाटक भेज दो। किन्तु किसी भी अवस्था में वह इस पहाड़ी मुल्क में न रहने पाये।"

औरंगज़ेब शिवाजी के प्रति इतना क्रुद्ध क्यों था? इसका कारण जानने के लिए पिछले डेढ़-दो बरस की घटनाओं की जानकारी आवश्यक है।

समुद्र के किनारे से लगा हुआ कोंकण बीजापुर के लिए विशेष महत्त्व नहीं रखता था, क्योंकि वहां से कोई आमदनी नहीं होती थी। पर शिवाजी के लिए वह इलाका बहुत महत्त्वपूर्ण था। इसलिए शिवाजी ने रघुनाथ बल्लाल अत्रे

को उधर भेजकर कई छोटे-मोटे क़िलों तथा दाभोल की बन्दरगाह पर कब्जा कर लिया। इन दिनों औरंगज़ेब बीजापुर वालों से लड़ने में व्यस्त था, इसलिए इसकी उपेक्षा करता रहा।

साथ ही शिवाजी ने एक चाल चली। उन्होंने अपने चतुर मन्त्री सोनोपंत डबीर को औरंगज़ेब के पास भेजा और उससे प्रार्थना की कि आदिलशाह का जो मुल्क उन्होंने जीत लिया था, उसे दिल्लीपति की स्वीकृति मिले। वास्तव में यह एक विचित्र बात थी। मुल्क था आदिलशाह का, उस पर शिवाजी ने अधिकार किया था और अब उस अधिकार को वैधानिक बनाने के लिए मुगल सम्राट् से प्रार्थना की जा रही थी।

यह प्रार्थना-पत्र पढ़कर औरंगज़ेब को बड़ी खुशी हुई। एक पत्र लिखकर यह स्वीकार किया कि, इस समय आपके पास बीजापुर वालों का जो भी इलाका (दाभोल की बन्दरगाह समेत) है, उसे हम स्वीकार करते हैं। आप से हम बहुत खुश हैं। २३ अप्रैल १६५७ ई० के उस पत्र द्वारा उसने शिवाजी को मुलाक़ात के लिए भी बुलाया।

बाहरी तौर पर तो यह सब ठीक हो गया, पर अन्दर ही अन्दर दोनों एक-दूसरे को अच्छी तरह जान गये थे और उचित अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे। यह अवसर शिवाजी को बहुत जल्द मिल गया। उनके गुप्तचर खबर लाये कि जुन्नर के थानेदार शहर की रक्षा में बड़े प्रमादी और बेख़बर हैं। इस खबर के मिलते ही उन्होंने एक रात जुन्नर पर धावा बोल दिया। रात अंधेरी थी और रक्षक सोये हुए थे। शिवाजी और उनके सैनिक रस्सों की सीढ़ियों द्वारा शहर की चार-दिवारी को चुपके से फाँद कर अन्दर जा पहुँचे और निद्रित

पहरेदारों को मौत के घाट उतार कर उन्होंने सारे शहर को लूट लिया। इस लूट में उन्हें तीन लाख होन (दस लाख रुपये), दो सौ घोड़े और कपड़ा, जवाहरात आदि अन्य बहुत-सा माल-असबाब मिला।

इसी प्रकार उन्होंने अहमदनगर पर भी धावा बोला और वहां के थानेदार नौशीरखाँ को पराजित किया। परन्तु इस लड़ाई में शिवाजी को भी काफ़ी हानि उठानी पड़ी, इसलिए वे पूना लौट आये।

अपनी इन पराजयों से औरंगज़ेब जल भुनकर राख हो गया। उसने करतलबखाँ, होशदारखाँ, मुल्तफ़तखाँ, नौशीरखाँ, मीर जुम्ला, राय करणसिंह, शाइस्ताखाँ, अब्दुल मुनीम आदि सरदारों को बड़ी-बड़ी फौज़ों के साथ शिवाजी के दमन के लिए भेजा और उन्हें आज्ञा दी कि "शिवाजी के इलाके के गांवों को भूमिसात् कर दो; लोगों को क़त्ल कर डालो; बिलकुल दया न दिखाओ; शिवाजी के पूना एवं चाकण थानों को धूल में मिला दो; हमारे इलाक़े के जो भी लोग शिवाजी से मिले हुए हों, उनकी गर्दनें उड़ा दो।"

जब शिवाजी चारों ओर से घिर गए और निकल भागने का कोई मार्ग नहीं रहा तो उन्होंने औरंगज़ेब के साथ और एक चाल चलने की सोची। उन्होंने अपने दूत रघुनाथपंत कोरडे को औरंगज़ेब की सेवा में भेजा और अपने अपराध के लिए क्षमायाचना की। इस समय औरंगज़ेब दिल्ली जाने की जल्दी में था, इसलिए उसने बहुत अधिक कठोर होना उचित नहीं समझा। उसने शिवाजी को लिखा, "आपने जो अपराध किये हैं, उन्हें भुलाया नहीं जा सकता; परन्तु

आपको अपने किये पर पछतावा है, इसलिए हम आपको क्षमा करते हैं।"

इसके बाद जब औरंगज़ेब ने शाहजहाँ को क़ैद में डाल कर दिल्ली का सिंहासन हस्तगत कर लिया, तब नये बादशाह के सम्मान में शिवाजी ने अपने वकील सोनाजी पंत के हाथों औरंगज़ेब के लिए भेंट-वस्त्र भेजे। फिर जब औरंगज़ेब का राज्यारोहण समारोह हुआ तब उसने शिवाजी के लिए भी पोशाक एवं प्रसन्नता का पत्र भिजवाया। राज्यारोहण के बाद औरंगजेब अपने भाइयों के साथ संघर्ष करने तथा उत्तर-भारत के शत्रुओं का मुकाबला करने में इतना व्यस्त हो गया कि दक्षिण की ओर ध्यान देना उसके लिए कठिन हो गया। इस परिस्थिति से लाभ उठाकर शिवाजी ने फिर मुगलों के प्रदेशों पर अधिकार करना शुरु कर दिया।

आदिलशाही के अधीन भूतपूर्व निज़ामशाही का जो कोंकण का इलाक़ा था वह बीजापुर से बहुत दूर था और उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया जाता था। अतः बीजापुर ने यह इलाका औरंगज़ेब को दे दिया था। इसका मतलब यह था कि वहां मुगलों की जबर्दस्त और कड़ी निगरानी हो जायगी। इसलिए शिवाजी ने सोचा कि इस सत्तान्तरण से पहले ही उस प्रदेश पर अधिकार कर लिया जाय। उन्होंने कल्याण और भिवंडी नाम के दो महत्त्वपूर्ण स्थानों पर धावा बोल दिया और बड़ी आसानी के साथ उन पर कब्ज़ा कर लिया।

कल्याण का जागीरदार मुल्ला अहमद नटिया आदिलशाह के बुलाने पर खजाना लेकर बीजापुर जा रहा था। शिवाजी ने वह खजाना भी लूट लिया। ८ जनवरी १६५८ को

उन्होंने माहुली का किला जीत लिया। उन्होंने चौल, प्रधानगढ़, लौहगढ़, राजमाची वगैरह अनेक किले जीत कर पूरे कल्याण प्रान्त को अधिकार में ले लिया।

शिवाजी के राज्य में नारी की बड़ी प्रतिष्ठा थी। इस सम्बन्ध में यह घटना दन्तकथा के रूप में महाराष्ट्र में प्रचलित है :—

जब पूरा कल्याण शिवाजी के अधिकार में आ गया तो उन्होंने आबाजी सोनदेव नामक एक ब्राह्मण को उसका सूबेदार बनाया। आबाजी सोनदेव ने दूसरी सम्पत्ति के साथ कल्याण के मुसलमान सूबेदार की रूपवती पत्नी को भी भेंट के तौर पर शिवाजी की सेवा में भेजा। एक स्त्री को मामूली वस्तु की तरह उपहार में भेजने का यह ढंग शिवाजी को बहुत बुरा लगा पर वे अपने स्वामिनिष्ठ सेवक का भी दिल दुखाना नहीं चाहते थे। इसलिए भरे दरबार में उस मुस्लिम स्त्री को सम्बोधित करके वे बोले, "यदि हमारी माता इतनी सुन्दर होतीं तो हम भी ऐसे ही रूपवान् होते।" उन्होंने उस स्त्री को अपने पति के पास सम्मानपूर्वक भिजवा दिया।

शिवाजी ने कोंकण में जो चौल का किला जीता, वह पुर्तगालियों के अधिकार में था। इस विदेशी सरकार से भी शिवाजी लोहा लेने के लिए तैयार हो गये। सिद्दियों के सागरी किलों पर भी शिवाजी ने कब्ज़ा कर लिया और विजयदुर्ग नामक एक मज़बूत सागरी किला बनवाया। उन्होंने अपनी युद्ध-नौकाएँ भी बनाईं और पश्चिमी सागर की रक्षा का प्रबन्ध किया।

दक्षिणी कोंकण में लखम सावन्त नामक एक सरदार

बीजापुर के आधीन था। उसने जब देखा कि बीजापुर के दरबार में अंधेर हो रहा है, तब उसने स्वतंत्र होने की कोशिश शुरु की। वह देख कर रणदुल्लाखाँ के बेटे रुस्तमज़माँ ने, जिसे बीजापुर की तरफ से कोंकण का सूबेदार बनाया गया था, सावन्त पर धावा बोल दिया। सावन्त ने शिवाजी से सहायता की प्रार्थना की। शिवाजी ने उसे स्वीकार करके अपनी सेना भेजी। उन दोनों सेनाओं ने रुस्तमजमाँ को हरा दिया। शिवाजी ने सावन्त का प्रदेश उसे लौटा दिया और उसे अपना मांडलिक बना लिया। अपने स्वामित्व की निशानी के तौर पर फोंडा नाम का किला और उसके आसपास का इलाका अपने लिए ले लिया। सावन्त के साथ जो संधि की गयी उसमें महत्त्वपूर्ण शर्त यह थी कि स्वराज्य-स्थापना के शिवाजी के उद्देश्य को स्वीकार करके सावन्त दूत की मार्फ़त विचार-विनिमय चालू रखें और कभी 'तुरुक' की मदद न करें।*

इस प्रकार लगभग पन्द्रह वर्षों के परिश्रम के बाद शिवाजी के पास बहुत बड़ा भूभाग एकत्र हो गया। यह प्रदेश आमदनी के लिहाज़ से बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं था, पर रक्षा की दृष्टि से उसका मूल्य बहुत अधिक था। इससे उनके स्वराज्य की नींव पक्की हो गयी।

* इसी दक्षिण कोंकण के आक्रमण में गोवा के सावंत शिवाजी से मिलने आये थे। शिवाजी ने उन्हें अपनी नौकरी में ले लिया। उनके पास पुर्तगाल में बनी एक दोधारी बढ़िया तलवार थी, उसके लिए तीन सौ होन और पोशाक देकर शिवाजी ने तलवार ले ली और उसका नाम भवानी रखा। उसकी प्राप्ति के बाद शिवाजी को विजय ही मिलती गयी। इसलिए उन्होंने उसे पूना में रखा। अब भी वह सातारा की देवी के मंदिर में मौजूद है।

चूहे ने शेर को मार डाला

छत्रपति शिवाजी के जीवन में जो विवादास्पद घटनाएँ हैं उनमें सबसे अधिक विवादास्पद अफ़ज़लखाँ के वध की है। इस घटना के आधार पर सारे मराठों को धूर्त तथा वञ्चक ठहराने की हास्यास्पद चेष्टाएँ की जाती हैं। अतः इसके सारे पक्षों पर सब प्रकार से विचार करने का प्रयत्न इस अध्याय में किया जायगा।

यद्यपि बीजापुर का राजकाज सुलतान अली आदिलशाह के नाम से चल रहा था, फिर भी असली सूत्र-संचालिका उसकी सौतेली माँ बेगम ताज़उल्-मुखद्दिकात थी, जो बड़ी साहबा के नाम से प्रसिद्ध थी। यह स्त्री बड़ी महत्त्वाकांक्षिणी एवं क्रूर थी। उसने अफ़ज़लखाँ के कहने से अपने बलाढ्य सरदार एवं सेनापति खान मुहम्मद को कपट से मरवा डाला था। उसके बाद और एक सरदार बहलोलखाँ की हत्या भी करवायी और फतहखाँ को ज़हर देकर मरवा डाला।

जब तक औरंगज़ेब दक्खिन में रहा बीजापुर वालों को अपनी जान बचाने की फिकर थी। इसलिए शिवाजी के

विद्रोह की ओर उन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया। पर जब १६५८ की जनवरी में औरंगज़ेब दिल्ली का तख्त हथियाने के लिए उत्तर भारत चला गया तो बड़ी साहबा ने चैन की साँस ली और अब वह शिवाजी को समाप्त करने की तदबीरें सोचने लगी।

अब तक शिवाजी की सामर्थ्य पर्याप्त बढ़ चुकी थी। जनवाद फैल चुका था कि शिवाजी के पास ६० हजार पैदल सेना है। बीजापुर के पास मुश्किल से दस-बीस हजार सेना थी। ऐसी अवस्था में शिवाजी को पकड़ना आसान नहीं था।

आखिर बड़ी साहबा ने अपने सरदारों को दरबार में बुलाया और भरी सभा में सवाल किया, "बताओ, शिवाजी को ज़िन्दा या मुर्दा कौन पकड़ कर लायेगा? जो यह कर सके वह पान का बीड़ा उठाये।"

इस पर पहाड़ जैसा भारी भरकम एक सरदार आगे बढ़ा और उसने बड़े आत्मविश्वास के साथ तश्तरी में से बीड़ा उठा लिया और शेर की तरह गरज कर बोला, "मैं उस पहाड़ी चूहे को गिरफ़्तार करके सरकार की खिदमत में पेश करूँगा।"

यही सरदार अब्दुल्ला भटारी अफ़ज़लखाँ था। अफ़ज़लखाँ किसी मामूली भटियारिन का बेटा था। कुछ लोगों का कहना है कि वह मुहम्मद आदिलशाह का दासीपुत्र-अनौरस बेटा था। शाहजी से वह बहुत जलता था। शाहजी के हाथों-पांवों में बेड़ियां डालकर बीजापुर ले जाने का कार्य उसी ने किया था। शिवाजी के बड़े भाई संभाजी के कनक-गिरि की लड़ाई में मारे जाने का उत्तरदायित्व भी अफ़ज़लखाँ

पर ही था। क्योंकि उसने उचित समय पर जान-बूझ कर उनकी मदद नहीं की थी। कर्नाटक में शिरे (शिरे पट्टण) के किले को जब वह घेरे हुए था तब उसने वहां के राजा कस्तूरी रंगा को मिलने के लिए बुलाकर उसे धोखे से मरवा डाला था। ·यह हिन्दुओं का कट्टर शत्रु था और गर्व से अपने को 'बुतशिकन' कहता था। बड़ी साहबा ने अफ़ज़लखाँ को सलाह दी कि मित्रता का बहाना करके शिवाजी को पकड़ लिया जाय।

कपट के साथ भेदनीति का भी प्रयोग करने की चेष्टा अफ़ज़लखाँ ने की। जैसे उसने कान्होजी जेधे के बेटे शिवाजी जेधे को उसके पिता से, जो शिवाजी महाराज का प्रगाढ़ मित्र था, अलग करने के लिए एक पत्र भेजा, जिसमें लिखा था, "आपके पिता और बिरादर वर्षों से शिवाजी की नौकरी कर रहे हैं. यह हम जानते हैं। पर उस बात को आप भूल जाइये। आप हमारे पक्ष में आ जायँ तो आपकी सरफ़राजी होगी।" इस प्रकार के पत्र और भी कई लोगों को भेजे गये। इन पत्रों में लालच के साथ धमकियां भी होती थीं। स्वयं अली आदिलशाह ने भी कई मराठा सरदारों को ऐसे पत्र भेजे। अपने पत्रों में उसने लिखा, "शिवाजी ने निज़ामशाही कोंकण के मुसलमानों को सता कर और लूटकर हमारे राज्य के कई किले हड़प लिए हैं। उसे रफ़ा-दफ़ा करने के लिए अफ़ज़लखाँ को सूबेदार बनाकर भेजा गया है। उनके मातहत रह कर शिवाजी को नेस्तो-नाबूद कर दिया जाय। उसके आदमियों और घोड़ों को किसी तरह का सहारा न दिया जाय; वे जहां मिलें क़त्ल कर दिये जायँ।"

शिवाजी पर धावा बोलने से पहले उनके पिता को

धमकाने का मार्ग भी बड़ी साहबा ने आज़मा कर देखा था। उसने शाहजी को लिखा था कि "आप तो हमारे वफादार सेवक हैं, पर आपका बेटा गद्दार है। उसे आप रोकें, वरना उसे ठिकाने लगाया जायगा।" इस पर शाहजी ने जवाब दिया, "हमारा बेटा हमारा कहना नहीं मानता, आप उसके साथ चाहे जैसा व्यवहार करें, हमें उसमें कोई आपत्ति नहीं है।"

अफ़ज़लखाँ ने बड़ी धूमधाम से अभियान को आरम्भ किया और छोटे-मोटे सरदारों एवं जनसाधारण को डराने के लिए हिन्दू मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करना शुरु किया। सन् १६५९ के सितम्बर महीने में अफ़ज़लखाँ बीजापुर से निकला। उन दिनों शिवाजी पूना में थे। अतः उसने पूना का रास्ता लिया। पर उसने जानबूझकर टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग अपनाया और महाराष्ट्र के पवित्र तीर्थ-स्थानों को भ्रष्ट करने में कोई कसर नहीं रखी। सबसे पहले उसने पंढरपुर के विट्ठल की दुर्गत की। वहाँ से वह तुलजापुर गया जहाँ शिवाजी की कुलदेवी भवानी का मन्दिर है। अफ़ज़लखाँ ने भवानी की मूर्ति को चकनाचूर कर दिया और उन टुकड़ों को चक्की में डालकर पिसवाया। इतने से भी उसे सन्तोष नहीं हुआ। उसने एक गाय को क़त्ल करके मन्दिर को अपवित्र किया। इसी प्रकार माणकेश्वर, करकंभ, भोसे, शम्भु महादेव आदि अन्य पवित्र मन्दिरों को भी उसने उन्माद में आकर नष्ट-भ्रष्ट किया। वास्तव में उन दिनों बीजापुरी सल्तनत की नीति धार्मिक सहिष्णुता की थी और अफ़ज़लखां के साथ भी कई हिन्दू सरदार थे। फिर भी उसने यह पागलपन किया। सम्भव है, शिवाजी को अपने अत्याचारों से उभाड़ कर पंढरपुर, तुलजापुर के खुले मैदानों

में लाने के लिए उसने यह सब किया हो; क्योंकि अब शिवाजी पूना छोड़कर जावली के दुर्गम प्रदेश में आ गये थे। ख़ान जानता था कि उस जंगली और पहाड़ी इलाके में खतरा है। इसलिए मँजे हुए शिकारी की तरह वह शेर को पहले बाहर निकालना चाहता था।

पर शिवाजी उसकी चालों को समझ गये थे। उसकी सेना का मुकाबला खुले मैदान में करना बहुत कठिन है, यह उन्होंने जान लिया था और इसीलिए उन्होंने अपने निवास के लिए प्रतापगढ़ जैसा क़िला चुना था। वे ख़ान की सेना को गहरे पानी में खींचकर डुबोना चाहते थे। इसलिए, यद्यपि मन्दिरों के अपमान से उनकी धमनियों में रक्त उबल रहा था, फिर भी अपने क्रोध को वे चुपचाप पी गये और शान्त रहे। अफ़ज़लखाँ ने शिवाजी के साले बजाजी नाईक निम्बालकर को पकड़ लिया, और उनको मार डालने की धमकी दी। फिर भी शिवाजी ने अपनी शान्ति नहीं खोयी। उन्होंने अफ़ज़लखाँ के एक अन्य सरदार नाईकजी पांढरे के द्वारा लगभग दो लाख रुपये जुर्माना दिलवाकर निम्बालकर को मुक्त कराया।

शिवाजी ने अपनी सारी सेना जावली में रखी थी। इसलिए अफ़ज़लखाँ ने अपने सरदारों को शिवाजी के अन्य प्रदेशों पर धावा बोलने के लिए भेज दिया और स्वयं जावली के पास वाई में अड्डा जमाकर बैठ गया। अफ़ज़लखाँ के सरदारों ने पूना, सूपा, कोंकण आदि रौंद डाले और लोगों को खूब लूटा। फिर भी शिवाजी चुप रहे। उन्होंने अपने सेना-पतियों को जावली से बाहर नहीं जाने दिया। बरसात के

दिन थे। अतः खान की अश्वारोही सेना बेकार थी। तोपें भी किसी काम की नहीं रही थीं।

जावली के जाल में उतरने की हिम्मत अफ़ज़लखाँ में नहीं थी और खुले मैदान में खान का मुकाबला करने को शिवाजी तैयार नहीं थे। पर इस प्रकार महीनों तक आमने-सामने बैठे रहने में भी खान की हेठी थी। उसका खर्चा भी बढ़ता जाता था। इसलिए उसने सोचा कि शिवाजी के साथ मित्रता का बहाना करके बातचीत की जाय और इसी बीच में उसे सदा के लिए समाप्त कर दिया जाय।*

उसने अपने वकील कृष्णाजी भास्कर को शिवाजी के पास भेजा और कहा कि—"बहुत वर्षों से तुम्हारे पिता के साथ मेरी घनिष्ठ मैत्री रही है, अतः तुम मेरे लिए बिलकुल अपरिचित नहीं हो, बल्कि तुम मेरे बेटे जैसे ही हो। अगर तुम यहाँ आकर मुझ से मिलो तो मैं अपना प्रभाव डालकर

---

* अफ़ज़लखाँ का दिल साफ़ नहीं था, यह बात सब पर प्रकट थी। इस विषय में राजापुर (कोंकण) के फैक्टरी रेकर्ड्ज़ से यह उद्धरण दिया जा सकता है—"राजापुर से वहाँ के प्रमुख हेनरी रिविंग्टन ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को १० दिसम्बर १६५६ के दिन लिखा था—इस वर्ष राजमाता (बड़ी साहबा) ने १० हजार घुड़सवार और पैदल सेना के साथ अब्दुल्लाखाँ को शिवाजी के विरुद्ध भेजा। वह जानती थी कि इतनी थोड़ी सेना लेकर शिवाजी का सामना करना संभव नहीं है, अतएव शिवाजी के प्रति मित्रता का ढोंग रचने की सलाह दी और वैसा ही उसने किया। उधर दूसरे (शिवाजी) ने भी उसके प्रति कपट-प्रेम दिखाया। शिवाजी को इस भेद का पता लग गया था या केवल सन्देह के कारण उसने ऐसा किया, यह निश्चित रूपेण ज्ञात नहीं हो सका है।"

तुम्हारे अधिकार में अब तक आये हुए सारे किलों और कोंकण के सारे प्रदेश पर तुम्हारा पूर्णाधिपत्य आदिलशाह द्वारा स्वीकृत करवा दूंगा। अगर तुम विद्रोह छोड़ दोगे तो तुम्हारी प्रतिष्ठा और वैभव में कई गुना वृद्धि होगी।"

शिवाजी ने दूत का यथोचित् सम्मान किया। रात को उससे गुप्त रूप से मिलकर हिन्दू और विशेषत: ब्राह्मण होने के नाते खान के सच्चे उद्देश्य का भेद देने के लिए उससे प्रार्थना की। तब कृष्णाजी भास्कर ने यह संकेत किया कि खान का दिल साफ नहीं है। उसके मन में कोई कपट अवश्य है।

अत: शिवाजी ने कृष्णाजी भास्कर के साथ अपने दूत पंताजी गोपीनाथ को अफ़ज़लखाँ के पड़ाव पर भेजा, और खान को कहलाया कि, "आपकी कृपा के लिए मैं बहुत आभारी हूँ। मेरा जो कुछ है वह जहाँपनाह आदिलशाह का ही है। पर आपसे खुले मैदान में मिलने से मैं घबड़ाता हूँ। इसलिए अगर आप प्रतापगढ़ की तलहटी में तशरीफ़ लायें तो बड़ी मेहरबानी होगी। तब मैं आपकी सारी आज्ञाओं को नत-मस्तक हो स्वीकार कर लूँगा।"

खान समझ गया कि वाई में बैठे-बैठे कुछ भी नहीं किया जा सकेगा। इसलिए वह शिवाजी की इच्छा के अनुसार जाकर मिलने को तैयार हो गया। इधर पंताजी गोपीनाथ ने अफ़ज़ल के कर्मचारियों को घूंस देकर इस बात का पता लगा लिया कि भेंट के समय ही शिवाजी को क़ैद या क़त्ल कर देने का अफ़जल ने प्रबन्ध कर लिया है। जब शिवाजी को इस बात का पता लगा तो उन्होंने भी अपनी रक्षा की तैयारी की।

गुरुवार १० नवम्बर १६५९ का दिन भेंट के लिए निश्चित किया गया। भेंट के लिए निम्नलिखित शर्तें तय की गयीं :—

१. यह भेंट प्रतापगढ़ के नीचे एक छोटी सी पहाड़ी की चोटी पर सम्पन्न हो।

२. भेंट के समय खान और शिवाजी दोनों सशस्त्र होकर आ सकते हैं।

३. कोई अपने साथ दो से अधिक सेवकों को न लाये।

४. अफ़ज़लखाँ स्वयं पहले पालकी में आकर मंडप में शिवाजी की प्रतीक्षा करें; उसके बाद शिवाजी आकर उनसे मिलें।

५. दोनों अपनी रक्षा के लिए दस-दस अतिरिक्त सैनिक लायें; पर उन्हें एक बाण के फासले पर रखें।

६. बातचीत के समय एकान्त रहे।

इन शर्तों से स्पष्ट है कि ख़ान को अपनी रक्षा की पूरी सहूलियत प्राप्त थी। अगर वह धोखा न करता तो खून-खराबा न होता। पर अगर वह दग़ा करे तो उसकी भी व्यवस्था शिवाजी ने कर रखी थी। ख़ान अपनी सारी फौज़ लेकर प्रतापगढ़ से कोई तीन मील के फ़ासले पर आ पहुँचा था। शिवाजी ने अपनी सेना को घाटी के चारों ओर फैला दिया था और उसे यह आदेश दे दिया था कि प्रतापगढ़ से तोपों की आवाज़ें सुनाई देते ही वह अफ़ज़लखाँ की फौज पर टूट पड़े।

दोपहर के समय भेंट होना तय हुआ था। भेंट के लिए प्रतापगढ़ किले के नीचे एक छोटी-सी पहाड़ी पर, एक

आलीशान मंडप बनाया गया था। मंडप का वैभव देखकर अफ़ज़लखाँ का दिल जल उठा और उसने कहा, "शिवाजी जैसा मामूली छोकरा, यह सारी शानशौक़त कहां से लाया? हमारे बादशाह के पास भी इतने कीमती साज़ो-सामान नहीं हैं।"

इस पर शिवाजी के दूत पंताजी गोपीनाथ ने कहा, "यह तो सारा आदिलशाह का ही वैभव है और उन्हीं को यह मिलेगा; आप फ़िक्र न करें।"

खान अपनी छावनी से निकला तो उसने शर्त के विपरीत अपने साथ डेढ़-दो हज़ार सशस्त्र सैनिक लिए। यह देखकर पंताजी गोपीनाथ ने समझाया कि "इतनी फ़ौज़ देखकर शिवाजी डर जायगा और गढ़ से नीचे ही नहीं उतरेगा। इसकी आवश्यकता भी क्या है? वह तो सिर्फ़ दो आदमियों के साथ आयेगा। वह कोई धोखा नहीं करेगा।" तब अफजल ने सैनिकों को वहीं छोड़ दिया और स्वयं पालकी में बैठ कर शामियाने में आ पहुँचा।

चलते समय शिवाजी ने अपने मंत्रियों एवं सेनापतियों से कहा कि, "हमने यह ख़तरा समझ-बूझ कर उठाया है। भवानी अवश्य सफलता प्रदान करेंगी; पर यदि कुछ अनिष्ट हो ही जाय तो आप लोग दुश्मन पर धावा बोल दें और उसे समाप्त करके समाज की रक्षा करें। छोटे संभाजी को राजा मानकर हमारे शुरु किए हुए काम को पूरा करें।"

खतरे से बचने के लिए शिवाजी ने अपने शरीर पर कवच और शिरस्त्राण पहन कर उन पर कुरता, पगड़ी इस ढंग से पहनी थी कि किसी को शक भी नहीं हो सकता था। इसी

तरह एक तेज़ बघनखा उन्होंने अपने बायें हाथ में छिपा लिया और दाहिने हाथ की बाँह के नीचे तक एक पतला किन्तु तेज़ बिछुआ रख लिया।

जब वे निकले तो गुप्तचर ने खबर दी कि अफ़ज़लखाँ के साथ सैयद बन्दा नाम का राक्षस जैसा मोटा-ताज़ा सैनिक मंडप में आया है। इसमें शिवाजी को खतरा दिखाई दिया। अतः उन्होंने खान से प्रार्थना की कि सैयद बन्दा से हमें डर लगता है, इसलिए उसे मंडप से बाहर भेज दिया जाय। अफ़ज़लखाँ ने उनकी इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। यही नहीं, उसने अपनी तलवार भी शिवाजी के मंडप में प्रवेश करते ही अपने दूत कृष्णाजी भास्कर के हाथ में दे दी।

जैसे ही शिवाजी ने मंडप में प्रवेश किया, अफ़ज़लखाँ हँसते हुए अगवानी के लिए आगे बढ़ा और शिवाजी को उसने भींच कर गले लगाया।

मगर यह क्या? यह तो प्रेम का आलिंगन नहीं बल्कि मृत्यु का पाश प्रतीत हुआ। दुबला, पतला और ठिगना मराठा अपने पहाड़ जैसे शत्रु के कन्धों तक ही पहुँच पाया। एकाएक अफ़ज़ल ने अपने बाहुपाश को जकड़ लिया और अपनी बायीं बगल में शिवाजी की गर्दन को ज़ोरों से दबाकर दाहिने हाथ से अपनी कटार शिवाजी की बगल में मारी। पर उससे केवल उनका कुर्ता ही फट पाया। कवच ने उनकी रक्षा की। खान का कपट प्रकट हो गया।

बाहुयुद्ध में निपुण होने के कारण शीघ्र ही शिवाजी ने खान की पकड़ से अपनी गर्दन छुड़ा ली। उन्होंने खान की कमर के पीछे से अपना बायाँ हाथ डालकर एक ही वार में

बघनखे से अफ़ज़ल* के पेट को फाड़ डाला जिससे उसकी अँतड़ियाँ बाहर निकल पड़ीं। तब उन्होंने अपने दाहिने हाथ से अफ़ज़ल की बग़ल में अपना बिछुआ भी घुसेड़ दिया।

खान अपनी अँतड़ियों को हाथ में पकड़ कर ज़ोर से चिल्लाया "धोखा! दग़ा! मार डाला! बचाओ!"

यह सब कुछ मिनटों में हो गया। यह इतना अनपेक्षित था कि कृष्णाजी भास्कर हक्का-बक्का देखता ही रह गया। जब वह होश में आया तो उसने शिवाजी पर हमला किया। उसे रोक कर शिवाजी बोले, "शिवाजी ब्राह्मण की हत्या नहीं करेगा। आप दूर रहें।" मगर कृष्णाजी ने फिर शिवाजी पर वार किया। तब शिवाजी ने मजबूर होकर उसे तलवार के एक ही वार से मौत के घाट उतार दिया।

---

*इस घटना का महाकवि भूषण ने कई छन्दों में बड़ा मार्मिक वर्णन किया है। एक छन्द देखिए :—

दानव आयो दग़ा करि जावळी
दीह भयारो[1] महामद भार्‌यो।
भूषण बाहुबली सरजा तेहि
भेटिवे को निरसंक पधार्‌यो॥
बीछू[2] के घाय गिरे अफजल्लहि
ऊपर ही सिवराज निहार्‌यो।
दाबि यों बैठो नरिंद[3] अरिंद[4] हि
मानो मयंद[5] गयंद[6] पछार्‌यो॥

१. भयानक, २. एक हथियार, ३. नरेश, ४. शत्रुघ्न, ५. सिंह, ६. हाथी।

इतने में शामियाने के बाहर खड़ा सैयद बन्दा दौड़कर अन्दर आ गया और उसने अपनी तलवार से शिवाजी के सिर पर वार किया जिससे शिवाजी की पगड़ी कट गयी और पगड़ी के नीचे के फौलादी टोप पर भी गहरा निशान बन गया। तभी शिवाजी का नाई जाति का रक्षक जिवा महाला दौड़ता हुआ आया और उसने सैयद बन्दा को चीर डाला। फिर ख़ान और शिवाजी के दस-दस रक्षक एक-दूसरे पर टूट पड़े। ख़ान के आदमी इस घटना से घबरा गये थे, इसलिए शिवाजी के आदमियों ने उन्हें थोड़ी ही देर में तलवार के घाट उतार दिया।

इस गड़बड़ी में अपनी अँतड़ियों को संभालता हुआ ख़ान बाहर अपनी पालकी में जा गिरा। उसके कहार पालकी उठाकर चलने ही वाले थे कि संभाजी, कावजी आदि सैनिकों ने कहारों के पाँव काट डाले और अफ़ज़लखाँ का भी सिर काट लिया। उस सिर को भाले की नोक पर उछालते हुए वे प्रतापगढ़ पहुँचे। फिर उन्होंने पूर्व निश्चय के अनुसार तोपें दाग़ दीं।

तोपों की आवाज़ सुनते ही छिपकर बैठे हुए शिवाजी के सैनिक अफ़ज़लखाँ के बेख़बर सैनिकों पर भूखे शेरों की तरह टूट पड़े और उन्होंने उनका ख़ात्मा करना शुरु कर दिया। थोड़ी ही देर में रात हो गयी। उस बोहड़ प्रदेश से निकल भागना भी उन सैनिकों के लिए असंभव हो गया। अफ़ज़लखाँ के दो बेटे मराठों द्वारा कैद किये गये। तीसरा बेटा फ़ाज़लखाँ किसी तरह जान बचाकर निकल भागा। इस लड़ाई में शिवाजी को ९५ हाथी, ४ हज़ार घोड़े, १२०० ऊँट, ७० तोपें,

२ हज़ार कपड़े की गाँठें और जवाहरात वग़ैरह के अलावा नक़द दस लाख रुपये भी मिले।

इस विजय से शिवाजी उन्मत्त नहीं हुए। उन्होंने सबको क्षमा कर दिया। अफ़ज़लखाँ और सैयद बन्दा की लाशों को सम्मान के साथ मंडप के स्थान पर दफना दिया। आज भी वहां इन दोनों के आलीशान मज़ार मौजूद हैं। बंदी सैनिकों में से जो शिवाजी की नौकरी करने पर राजी हुए उन्हें रख लिया गया। ऐसे सरदारों में सिद्दी हिलाल, पांढर, खराडे आदि थे। जो वापस जाना चाहते थे उन्हें बीजापुर भिजवा दिया गया। मामला खत्म हो जाने पर शिवाजी ने धार्मिक कटुता को भी उभरने नहीं दिया। एक वर्ष के बाद उन्होंने जो घोषणापत्र निकाला उसमें यह कहा गया कि अफ़ज़लखाँ के आने से पहले हमारे राज्य में हिन्दू-मुसलमानों को जो सुविधाएँ मिलती थीं, वे आगे भी मिलती रहेंगी और किसी के भी साथ धार्मिक पक्षपात नहीं किया जायगा।

अफ़ज़लखाँ की मृत्यु से भारत की सभी सत्ताएँ चौंक उठीं। सब ने यह समझ लिया कि शिवाजी अब उपेक्षणीय नहीं रहा है। शिवाजी की धाक जम गयी और उनकी सामर्थ्य भी बहुत बढ़ गयी।

बाजीप्रभु देशपांडे

अब शिवाजी ने विचार किया कि आदिलशाह अपने राज्य की रक्षा के लिए फिर से ज़रूर किसी न किसी को भेजेगा। अतः उन्होंने सोचा कि इस बार इलाके में बैठकर हमले की प्रतीक्षा करने के बजाय दुश्मन के प्रदेश पर कब्ज़ा करके उसे अपने राज्य की सीमा पर ही रोक लेना अच्छा होगा। इसलिए वे अपनी सेना को लेकर बीजापुर का प्रदेश जीतने चले। उनकी सेना तूफ़ान की तरह आगे बढ़ने लगी। अफ़ज़लखाँ के वध के बाद केवल अठारह दिनों के अन्दर पन्हाळगढ़ नाम का मज़बूत किला दो दिन के युद्ध के बाद जीत लिया। इन सौ मीलों के अन्दर चन्दनवन्दन, वसन्तगढ़, वर्धनगढ़, कराड का किला, मच्छीन्द्रगढ़, कल्याणगढ़ जैसे महत्त्वपूर्ण किले थे; उन पर भी शिवाजी ने अधिकार कर लिया।

अब आदिलशाह ने अपने सरदारों को फिर से शिवाजी को कुचलने के लिए भेजा। रुस्तुमेज़माँ के नेतृत्व में यह

दूसरा अभियान निकला। पिता की हत्या का बदला लेने के लिए तड़पने वाला फ़ाज़लखाँ और अन्य सरदार भी इस आक्रमण में सम्मिलित हो गए। मगर शिवाजी के सेनापति नेताजी पालकर और अन्य सरदार इतनी वीरता से लड़े कि बीजापुरी सेना को बुरी तरह मुँह की खानी पड़ी। मराठी सेना नेताजी पालकर के सेनापतित्व में सीधे बीजापुर तक पहुँच गयी। अगर उस समय नेताजी के पास पर्याप्त सैनिक होते तो वे उसी समय बीजापुर की सत्ता को धूल में मिला देते।

शिवाजी का मुकाबला कैसे किया जाय ? आदिलशाह के सामने यह समस्या थी। सोचते-सोचते उसे एक सरदार याद आया जिसकी उसने आज तक उपेक्षा की थी। उसका नाम था सिद्दी जौहर। यह हब्शी प्रारम्भ में मलिक रैहान नामक सरदार का गुलाम था। मलिक की मृत्यु होने पर उसके बेटों को हराकर वह कर्नूल का सूबेदार बन बैठा था। इस कारण आदिलशाह उससे बहुत रुष्ट था। पर जब कोई दूसरा दिखाई न दिया तो उसे सिद्दी को बुलाना पड़ा। उसने सिद्दी जौहर को पोशाक भेंट की और सलाबतखाँ की उपाधि प्रदान की। आदिलशाह ने उससे कहा, "अगर तुम शिवाजी को समाप्त कर दोगे तो हम तुम्हें कर्नूल का सूबेदार स्वीकार कर लेंगे।"

सिद्दी के पास लगभग २० हज़ार अश्वारोही और ४० हज़ार पैदल सैनिक थे। रुस्तुमेजमाँ, सिद्दी मसऊद, फ़ाज़लखाँ, बाजी घोरपड़े वग़ैरह अन्य सरदार भी उसके साथ हो लिये। उन दिनों शिवाजी मिरज का घेरा डाले थे। जब उन्होंने देखा कि सिद्दी अफ़ज़लखाँ से भी अधिक बड़ी सेना लेकर आ

रहा है तब वे समझ गए कि इसका मुकाबला करना उनके बूते की बात नहीं है। खुले मैदान में सामना करना तो बिलकुल असंभव था। इसलिए वे नये जीते हुए मज़बूत पन्हाला के गढ़ में जा बैठे। सिद्दी जौहर ने पन्हाला का घेरा डाल दिया।

शिवाजी के कुछ सरदार कोंकण में विजय के लिए गए थे। जब शिवाजी के पन्हाला में घिर जाने की खबर वहां पहुँची तो वे शिवाजी को छुड़ाने के लिए लौट आये और सिद्दी की सेना पर धावे बोलने लगे। नेताजी पालकर भी बीजापुर को जीतने की आशा छोड़ कर पन्हाला पहुँच गये। इन लोगों ने सिद्दी को हैरान करने का बहुत यत्न किया। पर वह इतनी मज़बूती के साथ वहां जमा हुआ था कि उस पर इन हमलों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

उसी समय और एक भयंकर संकट आ पड़ा, जिसके कारण शिवाजी को पन्हाला से निकलना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होने लगा। यह संकट था औरंगजेब के सेनापति शाइस्ताखाँ का आक्रमण। शाइस्ताखाँ की फ़ौज में लगभग ८० हज़ार अश्वारोही एवं ३० हज़ार पैदल, सैकड़ों हाथी, दर्जनों तोपें वग़ैरह थीं। वह सीधा पूना जा पहुँचा। मराठा सैनिक शाइस्ताखाँ से न डरे और न दबे। उनके छापामार दस्तों ने शाइस्ताखाँ के नाक में दम कर दिया।

शिवाजी ने सिद्दी जौहर के साथ सन्धि की बातचीत शुरु की। अली आदिलशाह से क्षमा मांगकर खिराज देने को भी वे तैयार हो गए। पर सिद्दी किसी तरह राजी नहीं होता था। अफ़ज़लखाँ का बेटा फ़ाज़लखाँ भी पिता की हत्या का बदला लेने पर अड़ गया था। फिर भी वे निराश नहीं हुए।

वे अधिकाधिक झुकते चले गये। यहां तक कि वे अपना सारा राज्य और सम्पत्ति आदिलशाह को समर्पित करने के लिए तैयार हो गये। आखिरकार सिद्दी का दिल पसीजा और वह शिवाजी से मिलने के लिए तैयार हो गया।

यह खबर आग की तरह सिद्दी की सेना में फैल गयी कि शिवाजी ने अपनी हार स्वीकार कर ली है और वह रात को हाथ बांध कर सिद्दी की छावनी में आकर उपस्थित होगा। सारे सैनिक विजयोत्सव मनाने में इतने मग्न हो गये कि अपने कर्त्तव्य का भी उन्हें विस्मरण हो गया।

इस अवसर से लाभ उठाकर शिवाजी लगभग १ हजार पैदल सैनिक, १५ घोड़े, २ पालकियाँ और कुछ धन साथ लेकर पन्हाला से चुपचाप निकल भागे। पंछी आखिर उड़ ही गया।

एक दन्तकथा बताती है कि शिवाजी की ही शक्ल-सूरत वाला एक मराठा वीर (संभवत: नेताजी पालकर) शिवाजी की पोशाक पहन कर सिद्दी जौहर से मिलने गया और उसी वक्त शिवाजी भाग निकले। जब बनावटी शिवाजी का भंडा फोड़ हो गया, तब तक शिवाजी बहुत दूर निकल गये थे। बाद में वह बनावटी शिवाजी भी दुश्मनों में फैली गड़बड़ी से लाभ उठाकर उनके चंगुल से छूट गया।

पन्हाला के उत्तर-पश्चिम में चालीस मील की दूरी पर विशालगढ़ नाम का एक किला है। पन्हाला की तरह विशालगढ़ को जीतना भी सिद्दी जौहर का उद्देश्य था। उसने विशालगढ़ को घेरने का भी प्रबन्ध किया था। जसवंतराव दलवी और सूर्यराव सुर्वे विशालगढ़ का घेरा डाले बैठे थे। परन्तु उनका घेरा सिद्दी के घेरे जितना सख्त नहीं था, इसलिए उसे भेद जाने की आशा शिवाजी ने की थी।

रास्ते की बीहड़ता और आँधी पानी के कारण ४० मील का फासला तय करने में शिवाजी को लगभग २१ घण्टे लग गये। दूसरे दिन शाम को ५-६ बजे के लगभग वे विशालगढ़ के पास पहुँचे। गढ़ के पूरब में ५-६ मील की दूरी पर गजापुर की घाटी थी। घाटी इतनी संकरी थी कि उसमें से एक समय में एक ही घुड़सवार गुजर सकता था; इसलिए उसे 'घोड़ा घाटी' कहा जाता था। घाटी तक जसवंतराव की सेनाएँ फैली थीं। दिन के उजाले में उनका सामना करके गढ़ पर पहुँचना आसान बात नहीं थी। फिर सिद्दी की फ़ौज़ भी शिवाजी का पीछा कर रही थी। इसलिए वे तेजी से जा रहे थे। उनके घोड़ाघाटी पहुँचते-पहुँचते ही सिद्दी की फौज आ धमकी। अब क्या किया जाय? इतने में शिवाजी के साथ आये कायस्थ जाति के वीर बाजीप्रभु देशपांडे आगे बढ़े और उन्होंने अपने स्वामी से प्रार्थना की कि, "आप चिन्ता न करें। सिद्दी की सेना को मैं तब तक इस घाटी में रोक रखूंगा, जब तक आप सकुशल गढ़ पर नहीं पहुँच जाते। गढ़ पर पहुँचते ही आप तोप दाग दें, ताकि हमें उसका पता चल जाय।"

अपने इस सेवक की त्यागभावना एवं बहादुरी को सराहते हुए शिवाजी आगे बढ़े और विशालगढ़ को घेरे बैठी सेना का मुकाबला करते हुए गढ़ पर चढ़ने लगे।

इधर सिद्दी की फौज़ से बाजीप्रभु और उनके सैनिक जूझते रहे। उनमें इतना जोश था कि सिद्दी के सैनिक एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा पाते थे। जो भी आगे बढ़ने की कोशिश करता, मौत का शिकार बन जाता। घोड़ाघाटी मानव के रुधिर से भर गयी। लगभग छः घण्टे तक यह

संग्राम जारी रहा। बाजीप्रभु का शरीर घावों से छलनी हो गया। फिर भी वे घाटी के मुँह पर खड़े शत्रु सैनिकों को तलवार के घाट उतारते रहे। इतने में अचानक एक गोली आकर उनके सीने में लगी और बाजीप्रभु नीचे गिर पड़े। धराशायी होने पर भी वे अपने सिपाहियों को प्रोत्साहित करते रहे। सैनिकों ने उनका स्थान लेकर शत्रु को रोके रखा। आखिर तोपों की आवाज़ें सुनाई दीं। और यह कहते हुए उस वीर पुरुष ने अपनी आँखें सदा के लिए मूंद लीं कि "महाराज सकुशल गढ़ पर पहुँच गये—अब मैं सुख से मरूँगा।"

बाजीप्रभु के इस महान् आत्मत्याग के बाद उस घाटी का नाम बदल कर उसे "पावनघाटी" कहा जाने लगा।

सिद्दी मसऊद विशालगढ़ को घेरे बैठी सेना से जा मिला और उसने विशालगढ़ के घेरे को और मज़बूत बनाकर शिवाजी को वहीं घेरने का विचार किया। मगर अब मराठों का उत्साह इतना बढ़ गया था कि उन्होंने घेरा डाले बैठी सेनाओं की नाक में दम कर दिया। इसलिए सिद्दी निराश होकर लौट गया। फिर शिवाजी भी विशालगढ़ से निकल कर अपनी माता जीजाबाई के दर्शनों के लिए राजगढ़ चले गये।

जब अली आदिलशाह ने देखा कि शिवाजी अब हाथ नहीं आयेगा तो उसने शिवाजी द्वारा चलायी गयी सन्धि की बातचीत को ही जारी रखना ठीक समझा। शिवाजी को भी शाइस्ताखाँ का सामना करना था, इसलिए पन्हाला का किला आदिलशाह को देकर २२ सितम्बर १६६० को उससे सन्धि कर ली। ●

शाइस्ताखाँ से मुठभेड़

इसी बीच मराठों ने शाइस्ताखाँ को एक महत्त्वपूर्ण पाठ पढ़ाया था। वह था चाकण का पाठ। पूना के उत्तर में चाकण नाम का कस्बा है। वहां के किले का नाम था संग्रामदुर्ग। महाराष्ट्र के अन्य पहाड़ी किलों की तुलना में संग्रामदुर्ग बिलकुल ही साधारण किला था। इस गढ़ी पर शाइस्ताखाँ ने भारी फ़ौज के साथ हमला बोल दिया। गढ़ी में बहुत कम सैनिक थे पर वे इतनी शूरता से लड़े कि ५५ दिन तक शाइस्ताखाँ की सेना एक पग भी आगे नहीं बढ़ सकी। अन्ततः गढ़ी की दीवार को सुरंग से उड़ाने में मुगल सेना को सफलता मिली और तब कहीं संग्रामदुर्ग शाइस्ताखाँ को मिल सका। परन्तु यह विजय बहुत ही महंगी पड़ी। इसमें उनके दो सौ अड़सठ सैनिक मारे गए और छः सौ से ज़्यादा घायल हुए। किलेदार फिरंगोजी नरसाला की वीरता पर मुग्ध होकर शाइस्ताखाँ ने उसे अपनी सेना में ऊँचा पद देने का लालच दिया पर उस वीर ने इन्कार कर दिया।

उन्हीं दिनों बीजापुर का सुलतान कर्नाटक पर आक्रमण कर रहा था। इस अवसर से लाभ उठा कर शाइस्ताखाँ ने बीजापुर का परिंडा नामक क़िला जीतने के लिए अपने उज़बेगी सरदार कारतलबखाँ को भेजा। कारतलबखाँ ने परिंडा के क़िलेदार ग़ालिब को लालच दिखा कर क़िले पर अधिकार कर लिया। स्वयं ग़ालिब भी आदिलशाह की नौकरी छोड़ कर मुग़लों की सेना में भर्ती हो गया।

इस घटना से यह बात स्पष्ट हो गयी कि अब बीजापुरी और मुग़ल मिल कर शिवाजी का मुक़ाबला नहीं करेंगे। इससे शिवाजी ने क़ाफी लाभ उठाया।

शाइस्ताखाँ ने परिंडा के विजयी सरदार कारतलबखाँ को शिवाजी के कोंकण वाले इलाक़े पर अधिकार करने के लिए भेजा। उसके साथ जो बड़े-बड़े सरदार थे उनमें विदर्भ की ख्यातनामा महिला-सेनापति पंडिता रायबागन (उदाराम देशमुख की विधवा पत्नी सावित्रीबाई) भी थी। रायबागन का अर्थ है राजबाघिन। यह स्त्री सचमुच शेरनी जैसी शूर एवं निर्भीक थी।

कारतलबखाँ की सेना में लगभग तीस हज़ार सैनिक थे। इतनी भारी सेना को लेकर कारतलबखाँ जब कोंकण में प्रवेश करने लगा तो उंबरखिंड नाम की घाटी में शिवाजी की सेना ने उसे चारों ओर से इस तरह घेर लिया कि उस की सेना के लिए पानी तक मिलना असम्भव हो गया। इस घाटी में बड़ा ही घना जंगल था। रास्ता भी बहुत तंग था। मराठों ने मुग़लों का उन्मूलन शुरू किया। अन्ततः कारतलबखाँ रायबागन की मार्फ़त शिवाजी से संधि की बातचीत करने पर मजबूर हुआ। शिवाजी को उन दिनों धन की

बहुत आवश्यकता थी। अतः उन्होंने कारतलबखाँ से बड़ी भारी रक़म प्राप्त की और उसकी सेना को वापस जाने दिया। २ फरबरी १६६१

अब शिवाजी दक्षिणी कोंकण की ओर बढ़े। रास्ते में पड़ने वाले इलाक़ों पर अधिकार करते हुए वे राजापुर बंदरगाह में जा पहुंचे। उन दिनों राजापुर में देश-विदेश के व्यापारियों की कोठियां थीं, जिनमें ईरानी, पुर्तगाली, अंगरेज, अरब, डच, फ्रान्सीसी आदि सभी थे। शिवाजी ने वहां के धनिकों को बुलाया और उनसे धन की मांग की। लगभग सभी ने अपने-अपने भाग का धन (खंडनी) दे दिया, जिन्होंने इन्कार किया, उन्हें सजाएँ दी गयीं। वहां के अंगरेजों ने धन देने में टालमटोल की। पुरानी सन्धियों को ठुकरा कर अंगरेजों ने पन्हाला के घेरे के समय सिद्दी जौहर की सहायता में तोप और गोला बारूद भेजा था, जिस के कारण शिवाजी पहले से ही उनसे नाराज़ थे। उनकी उद्दण्डता को देख कर शिवाजी ने वहां के सारे अंगरेजों को—जिनमें हेन्री रिविंगटन, रैंडॉल्फ टेलर, रिचर्ड टेलर, गीफर्ड, फेरॉण्ड, रिचर्ड नेपियर, सैम्युअल बर्नार्ड आदि थे—क़ैद किया और उनकी कोठियों को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला, गड़े धन की खोज में उनकी कोठियां खुदवायी गयीं। इससे शिवाजी को लगभग चौबीस हजार होन (पौन लाख रुपये) का माल एवं नक़द पैसा प्राप्त हुआ। गिरफ्तार अंगरेजों को उन्होंने सात महीने से लेकर दो वर्ष तक कारागार में रखा। दो अंगरेज जेल में ही मर गये। इसकी क्षतिपूर्ति के लिए अंगरेजों ने बरसों तक शिवाजी के साथ लिखापढ़ी की पर वे एक पाई भी प्राप्त न कर सके! इस प्रकार अपनी सामर्थ्य की झलक अंगरेजों को दिखाने वाले

शिवाजी को बाद के अंगरेज इतिहास-लेखकों ने लुटेरा और हत्यारा कहा, तो क्या आश्चर्य ?

शाइस्ताखाँ सन् १६६० के सितम्बर महीने से पूना में अड्डा जमाये बैठा था। उसने अपना अड्डा स्वयं शिवाजी के प्रासाद अर्थात् लालमहल में ही जमाया था। उससे सन्धि की बातचीत करने के लिए शिवाजी ने अपने दूत सोनोपंत उबीर को भेजा, किन्तु शाइस्ताखाँ ने उसे महत्त्व नहीं दिया। शिवाजी को दक्षिणी कोंकण में फँसा देख कर उसने उत्तरी कोंकण पर भी हमला बोल दिया और शिवाजी का जीता हुआ इलाक़ा फिर से अपने अधिकार में ले लिया। अब शिवाजी ने शाइस्ताखाँ पर आकस्मिक हमला बोल कर उसे भयभीत करने का निश्चय किया।

उन दिनों पूना शहर शाइस्ताखाँ की सेनाओं से भरा हुआ था। अतः पूना में प्रवेश करना और लालमहल तक पहुंचना शिवाजी के लिए सर्वथा असम्भव था। फिर भी उन्होंने हिम्मत की।

अपने इस दुस्साहस के लिए शिवाजी ने ५ अप्रैल सन् १६६३ की रात चुनी। उस दिन मुसलमानों के उपवास वाले रमज़ान महीने की छठी तारीख थी। अतः दिन भर के उपवास के बाद रात को भरपेट खाना खाकर सो रहने की तैयारी में सभी सैनिक लगे थे। शिवाजी अपने साथ नेताजी पालकर, पेशवा मोरोपंत, बाबाजी देशपांडे, चिमणाजी देशपांडे, सर्जाराव जेधे, चाँदजी जेधे आदि वीर सरदारों तथा दो हज़ार सैनिकों को लेकर पूना शहर से बाहर जा पहुँचे। वहां पर नेताजी और मोरोपंत को आठ-आठ सौ सैनिक देकर उन्हें मुगल सेना के दो हिस्सों पर खड़ा किया।

इससे पहले पूना से सिंहगढ़ जाने वाली सड़क पर भी उन्होंने स्थान-स्थान पर गुप्त रूप से अपने सैनिकों को खड़ा कर रखा था क्योंकि शाइस्ताखाँ पर छापा मारने के बाद वे सिंहगढ़ जाने वाले थे।

इसके बाद शिवाजी ने अपने साथ अपने दो बालमित्रों बाबाजी तथा चिमणाजी को चार सौ सैनिकों सहित लिया और उन्होंने शहर में ऐसे प्रवेश किया मानो वे मुगल सेना के ही सैनिक हों। जब मुगल पहरेदारों ने उनसे पूछताछ की तब उन्होंने अपने को मुगल सेना के दक्षिणी सैनिक बतलाया और कहा कि "हम लोग शहर से बाहर गश्त लगाने गये थे, वहां से लौट रहे हैं।" चूँकि मुगल सेना में बहुत बड़ी संख्या में मराठा सैनिक मौजूद थे; इसलिए पहरेदारों को कोई संदेह नहीं हुआ। वे लोग आसानी से लालमहल तक पहुँच गये।

लालमहल शिवाजी का अपना महल था। इसलिए वे इस महल के कोने-कोने से परिचित थे। उन्होंने अपने गुप्तचरों द्वारा यह सब पता लगा लिया था कि शाइस्ताखाँ किस कमरे में सोता है, पहरेदार कहां रहते हैं आदि।

शिवाजी जब अपने साथियों सहित रसोईघर में पहुँचे तो वहां कुछ रसोइये प्रातःकाल के खाने की तैयारी में लगे हुए थे। कुछ रात के भोजन के बर्तन माँज रहे थे और कुछ सोये हुए थे। इन सब रसोइयों और खानसामाओं को शिवाजी के साथियों ने चुपचाप मार डाला। रसोईघर से होकर ही वे शाइस्ताखाँ के अन्तःपुर में प्रवेश करने वाले थे। रसोईघर और अन्तःपुर के बीच की दीवार में एक दरवाजा था जो ईंटों से बन्द कर दिया गया था। जब ईंटें निकाल कर शिवाजी

और उनके साथी उस मार्ग को खोलने लगे तो उस आवाज़ से एक नौकर जाग पड़ा और उसने खान को जगा कर बताया कि रसोईघर की तरफ से कोई आवाज़ आ रही है। उसकी बात सुनकर खान को बड़ा गुस्सा आया। भला यह भी कोई बात है ? रसोईघर में तो हमेशा आवाज़ रहती ही है। या तो रसोइये होंगे या कोई चूहे-छछूंदर होंगे। नौकर को डपट कर वह फिर सो गया।

थोड़ी देर में ईंटें निकाल कर शिवाजी ने वहां अच्छा-सा मार्ग बना लिया और वे चिमणाजी तथा बापूजी देशपांडे के साथ शाइस्ताखाँ के शयनकक्ष में पहुँच गये। उनके पीछे-पीछे शेष सैनिक भी वहां जा पहुँचे।

इतने लोगों के आगमन से वहां आवाज़ होना स्वाभाविक ही था। उस आवाज़ से अन्तःपुर की दासियां जाग गयीं और वे खान की तरफ दौड़ीं। शाइस्ताखाँ के शस्त्र सम्हाल सकने के पहले ही शिवाजी उस पर टूट पड़े। इतने में कुछ स्त्रियों ने कमरे के सारे दीप बुझा दिये। शाइस्ताखाँ के दाहिने हाथ की तीन उंगलियां कट गयीं। अंधेरे के कारण बड़ी गड़बड़ मच गयी। पता नहीं चलता था कि कौन किस पर वार कर रहा है। इसलिए १२ स्त्रियां भी मारी गयीं जिनमें कुछ शाइस्ताखाँ की पत्नियां और दासियां थीं। दो मराठे पानी के हौज़ में जा गिरे। इस गड़बड़ी से लाभ उठाकर दो दासियों ने शाइस्ताखाँ को ज़नानखाने के एक कोने में ले जाकर छिपा दिया। इस कारण शाइस्ताखाँ की जान बच गयी।

इधर बाबाजी ने २०० सैनिकों सहित, महल के पहरेदारों पर हमला कर दिया और सभी को मार डाला। कुछ मराठे

नौबतखाने में जा पहुँचे और शाइस्ताखाँ का नाम लेकर उन्होंने वहां के लोगों को नौबत बजाने की आज्ञा दी। नौबत और नगाड़ों की तुमुल ध्वनि में अन्तःपुर का करुण क्रन्दन और पहरेदारों की चीख-पुकार डूब गयी।

पास ही शाइस्ताखाँ का तरुण एवं शूर बेटा अबुलफ़तह सोया हुआ था, जो एक ही दिन पहले पूना पहुँचा था। वह पिता की रक्षा के लिए दौड़ा। उसने दो-तीन मराठों को मार डाला पर अन्ततः खुद भी मारा गया।

थोड़ी देर में सारी छावनी जग गयी और बहुत से सैनिक लालमहल की ओर दौड़े। उस समय वहां इतनी धाँधली मची हुई थी कि किसी को यह भी न सूझा कि दुश्मन को घेर लिया जाय। इस गड़बड़ी से लाभ उठाकर शिवाजी भाग निकले। उनका किसी ने पीछा नहीं किया।

प्रातःकाल होने पर मुगलों ने सिंहगढ़ पर धावा बोला। परन्तु शिवाजी ने ऊपर से तोपें चलानी शुरु कीं। इससे मुगलों की अत्यन्त हानि होने लगी। बरसात के दिन नजदीक आ रहे थे इसलिए घेरा डालकर बैठना भी संभव नहीं था। खान का हाथी तोप के गोले से मर गया। निराश होकर खान वापस लौट आया। बाद में जसवन्तसिंह ने भी सिंहगढ़ जीतने की चेष्टा की; पर वह भी औरंगाबाद चला गया।

इस काण्ड में शिवाजी के केवल छः सैनिक मरे और ४० घायल हुए; जब कि शाइस्ताखाँ का बड़ा बेटा, दामाद, एक सेनापति, चालीस बड़े अधिकारी एवं बारह स्त्रियां मारी गयीं। छोटे-मोटे नौकर कितने कटे इसका किसी ने पता तक नहीं लगाया। कई स्त्रियां और खान के दो बेटे घायल हुए।

स्वयं शाइस्ताखाँ भी उँगलियों के कट जाने से ठूँठ बन गया। लालमहल के बाहर मुगल सरदार जसवन्तसिंह अपने दस हजार सैनिकों सहित डेरा डाले था; पर शिवाजी को रोकने में उसकी तरफ से कोई कदम नहीं उठाया गया। शाइस्ताखाँ ने उसे व्यंग्यपूर्वक कहा, "जब दुश्मन मुझ तक पहुँच गया तब मैंने समझा था कि आप उससे जूझते हुए कट मरे होंगे!" *

*शाइस्ताखाँ की फज़ीहत के बारे में महाकवि भूषण ने कई छन्द लिखे हैं; यहाँ "शिवराज-भूषण" का ३२३वां छन्द दे रहे हैं :—

सासताखां दक्खिन को प्रथम पठायो तेहि
बेटा के समेत हाथ जाय कै गँवायो है।
भूषन भनत जौं-लौं भेजौं उत ओरे तिन
वे ही काज बरजोर कटक कटायो है॥
जोई सूबेदार जात सिवाजी सों हारि तासों
अवरंग साहिं इमि कहै मन भायो है।
मुलुक लुटायो तो लुटायो, कहा भयो ? तन आपनो
बचायो, महाराज करि आयो है॥

सूरत की पहली लूट

शिवाजी के इस अद्‌भुत साहस से मराठों में बड़ा उत्साह फैल गया । तीन बरस तक पूना में अड्डा जमाये बैठे शाइस्ताखाँ शिवाजी के छापे के बाद तीन दिन भी पूना में नहीं ठहरे। उन्होंने औरंगाबाद में शरण ली ।

अपने मामूँ जान की इस दुर्गति का हाल जब औरंगज़ेब तक पहुँचा तब वह गर्मियां बिताने काश्मीर जा रहा था। यह खबर सुनकर औरंगज़ेब को बड़ा ही गुस्सा आया। उसे लगा कि इस दुर्घटना का कारण स्वयं शाइस्ताखाँ की मूर्खता ही थी। इसलिये उसे सज़ा देने के लिये उसने उसे बंगाल का सूबेदार बना दिया। उन दिनों बंगाल-असम को नरक समझा जाता था। इस आज्ञा से शाइस्ताखाँ को बहुत दुःख हुआ। उसने सम्राट् को लिखा कि—"आप मुझे और कुछ दिन यहाँ रहने दीजिये, मैं शिवाजी को ज़रूर समाप्त कर डालूंगा।" पर औरंगज़ेब ने उसकी एक न सुनी। अन्त में अपमानित होकर वह बंगाल की ओर चल दिया । उसके स्थान पर

औरंगज़ेब ने शाहज़ादा मुअज़्ज़म को दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजा। यह एक रंगीला और विलासी राजपुत्र था। उससे डरने की शिवाजी को कोई आवश्यकता नहीं थी; अतः लगेहाथों और भी एक साहसिक कार्य करने का उन्होंने संकल्प किया।

इन सब लड़ाइयों में शिवाजी की अत्यधिक आर्थिक क्षति हुई थी। अब उन्हें धन की बहुत आवश्यकता थी। पर वे मुग़लों की तरह ग़रीबों को लूटना नहीं चाहते थे, उन्हें तो ऐसे अमीरों की आवश्यकता थी जिनके पास ढेरों धन बेकार पड़ा हो। अतः यह खोजना आवश्यक हो गया था कि ऐसे अमीर कहां मिलेंगे? इसके लिए उन्होंने अपने गुप्तचर विभाग के प्रधान बहिर्जी नाईक को नियुक्त किया। उन दिनों औरंगाबाद, बुरहानपुर, धरणगांव, कारंजा जैसे कई शहर सम्पत्ति के लिये प्रसिद्ध थे। परन्तु उनका धनसम्पन्न होना ही पर्याप्त नहीं था। ऐसा नगर चाहिये था, जहां किसी प्रतिकार का सामना न करना पड़े। साथ ही वे अपने असली शत्रु मुग़ल सम्राट् को भी एक धक्का देना चाहते थे। इन सब दृष्टियों से उन्होंने गुजरात के सम्पन्न शहर सूरत को लूटने का निश्चय किया। इस शहर की पूरी जानकारी बहिर्जी नाईक स्वयं ले आये।

पश्चिमी समुद्र के किनारे पर बसी हुई सूरत की बन्दरगाह उन दिनों मुग़ल साम्राज्य की सबसे अधिक समृद्धिशाली नगरी थी। वहां भारत ही नहीं बल्कि सारे संसार की सम्पत्ति इकट्ठी होती थी। मक्का जाने वाले यात्री भी इसी बन्दरगाह से जाते थे। शहर इतना सम्पन्न था फिर भी इसकी रक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था। उसके चारों ओर

दीवार तक बनवाने की परवाह मुग़लों ने नहीं की थी। इसकी जनसंख्या दो लाख के लगभग थी। यहां अंगरेज, डच फ्रांसीसी, यूनानी, ईरानी, तूरानी, अरब, हब्शी, यहूदी, अफ़ग़ानी आदि देश-विदेश के व्यापारियों की कोठियां थीं। बहरजी बोहरा नाम के व्यापारी की सम्पत्ति ८० लाख रुपयों के लगभग बतायी जाती थी। मुल्ला अब्दुल जाफ़र नामक व्यापारी के माल से भरे हुए उन्नीस जहाज़ उस समय बन्दरगाहों में खड़े थे। एक हिन्दू व्यापारी आठ करोड़ रुपयों का मालिक था। एक अन्य हिन्दू व्यापारी के पास शिवाजी को २८ सेर वज़न की मोतियों की मालाएं मिलीं। नगर की रक्षा के लिए नगर-शासक इनायतखाँ को पांच सौ घुड़सवारों का खर्चा मिलता था, पर वह सारी रकम स्वयं हड़प कर जाता था। सूरत के डच एवं अंगरेज़ व्यापारियों ने अपनी कोठियों की रक्षा का कुछ प्रबन्ध किया था किन्तु शिवाजी विदेशियों को सताना नहीं चाहते थे।

तीन सौ मील के इस रास्ते में कोई भी शिवाजी को न टोकता, यह तो असम्भव ही था, पर उसके उत्तर में शिवाजी कह देते—"मैं तो मुग़लों का सरदार हूँ, सम्राट् की आज्ञा से अहमदाबाद जा रहा हूँ।" उन्होंने यह बात भी फैला दी थी कि मैं औरंगाबाद पर धावा बोलने जा रहा हूँ। इससे उधर शाहज़ादा मुअज़्ज़म शिवाजी के प्रतिकार की तैयारी में लग गया। अतः इधर शिवाजी को रोकने कोई नहीं आया। और भी एक चाल उन्होंने चली। वे दिन में किसी जंगल में आराम करते थे और रात को यात्रा करते थे। १ जनवरी सन् १६६४ को उन्होंने नासिक-त्र्यंबकेश्वर छोड़ा और लूट का माल लाने के लिये कुछ ख़ाली घोड़े साथ लेकर केवल चार हज़ार सवारों

समेत सूरत से तीस मील की दूरी पर स्थित गणदेवी नामक स्थान में वे ४ जनवरी को पहुँच गये।

दूसरे दिन शिवाजी सूरत से ५ मील दूर उटना गांव पहुँच गये। वहां से उन्होंने अपने दूत के हाथों सूरत के नगर-शासक इनायतखाँ को संदेशा भेजा कि—"कल हम सूरत पहुँच रहे हैं। हम शहर के नागरिकों को कोई कष्ट नहीं पहुँचाना चाहते; हम केवल मुगल सत्ता से बदला लेना चाहते हैं। हमें धन की आवश्यकता है, अतः आप स्वयं और शहर के तीन सबसे बड़े व्यापारी हाजी सैयद बेग, बहरजी बोहरा तथा हाजी कासम आकर हमसे मिलें और जुरमाने की रकम निश्चित करके देने का प्रबन्ध करें। अगर आप ऐसा नहीं करेंगे तो हम शहर को लूट लेंगे, अर्थात् भविष्य के परिणामों का उत्तरदायित्व हम पर नहीं, आप पर होगा।"

इनायतखाँ ने उनके इस सुझाव को ठुकरा दिया। उसने सोचा, ये सब गीदड़-भबकियां हैं; भला मुगल सत्ता से कौन लोहा ले सकता है? अतः दूसरे दिन अर्थात् बुधवार ६ जनवरी सन् १६६४ को दिन के कोई ११ बजे शिवाजी सचमुच ही सूरत पहुँच गये और पूर्वी ओर के बुरहानपुरी दरवाज़े से बाहर, कोई दो फलांग की दूरी पर, एक बाग़ में उन्होंने अपना डेरा लगा दिया। अब तो नगरशासक तथा व्यापारियों के होश उड़ गये। वे जल्दी से किले के अन्दर जा घुसे। यह नगरशासक भी इतना स्वार्थी था कि व्यापारियों से रिश्वत लेकर ही उसने उन्हें किले में शरण दी।

अब शिवाजी के सैनिकों को सारा नगर खाली ही मिला और उन्होंने आराम से उसे लूटना शुरु किया। लूट का सारा माल वे शिवाजी के सामने लाकर रख देते थे। वहां उसकी

छंटनी होती थी। सोना, चांदी, हीरे, मोती, नकद रुपया जैसा कीमती माल ही वे उठाते थे। अगर कोई साधारण चीज़ लाता तो वे उन्हें सिपाहियों में बांट देते थे। इस प्रकार एक करोड़ से भी अधिक रुपयों का माल मराठों के हाथ लगा। अगर इनायतखाँ चुपचाप बैठा रहता तो धन से सन्तुष्ट होकर शिवाजी लौट जाते। मगर उसने एक निन्दनीय षड्यन्त्र रचा, जिससे सूरत की सूरत ही बिगड़ गयी।

लूटपाट शुरु होते ही इनायतखाँ ने अपने एक युवा अनुचर को सन्धि की बातचीत के लिए शिवाजी के पास भेजा। सन्धि की बातचीत तो एक बहाना-मात्र था, भेंट के समय शिवाजी की हत्या करना ही उसका वास्तविक उद्देश्य था। पर शिवाजी के शरीर-रक्षक बेसुध नहीं थे। जैसे ही वह कटार लेकर शिवाजी पर टूटा, पास खड़े शरीर-रक्षक ने उतनी ही तेजी से उसके हाथ को काट डाला। मगर उसने इतने वेग से आक्रमण किया था कि कटे हाथ वाली खून से सनी बांह लेकर वह शिवाजी पर गिर पड़ा, जिससे वे दोनों धरती पर आ रहे। उसके रक्त से शिवाजी के कपड़े और शरीर लथपथ हो गये, अतः आसपास के लोगों को ऐसा लगा कि शिवाजी महाराज घायल हो गये हैं। चारों ओर से मराठा सैनिक दौड़ आये और उन्होंने उसकी बोटी-बोटी नोच डाली। सैनिकों को इतना क्रोध आया कि उन्होंने शहर से पकड़ कर लाए हुए लोगों का कत्लेआम शुरु कर दिया। उन्होंने शहर में जाकर लूटे हुए घरों में आग लगाना शुरु किया। सारा शहर धूएं और आग की लपटों का शिकार हो गया। तीन ही दिनों में शहर का लगभग दो-तिहाई भाग जल कर नष्ट हो गया। शिवाजी के लोगों ने स्त्रियों, बच्चों, बूढ़ों, फ़कीरों, गरीबों,

मस्जिदों, दरगाहों, गऊओं आदि को तकलीफ़ नहीं दी। फ्रांसीसी पादरी रेवरेंड फ़ादर एम्ब्रास की प्रार्थना स्वीकार कर ईसाइयों के गिरजाघर की रक्षा का भी उन्होंने प्रबन्ध करवा दिया।

शिवाजी जानते थे कि लूट की खबर मिलते ही कोई मुगल सरदार फ़ौज लेकर आयेगा। इसलिए उन्होंने सूरत के चारों ओर अपने गुप्तचर रख दिये थे। वे खबर लाये कि मुगल सरदार महाबतखाँ सूरत की रक्षा के लिए आ रहा है। अतः शीघ्र ही वे लूट का माल लाद कर सूरत से चल पड़े।

सूरत के इस अभियान को लेकर अंगरेजों ने शिवाजी को बहुत लज्जित करने की कोशिश की है। पर इस तरह एक-दूसरे के प्रदेशों को लूटना, जलाना उस काल की राजनीति में वर्ज्य नहीं समझा जाता था। अगर शिवाजी की बात मानकर सूरत के नगररक्षक एवं व्यापारियों ने कुछ धन उन्हें दे दिया होता तो इतना भीषण काण्ड न मचता।

शिवाजी के चले जाने के बाद मुगलों ने शहर के चारों ओर पक्की चारदीवारी बनायी और पहरे लगाये। चतुर अंगरेजों ने सोचा कि किसी स्वतन्त्र द्वीप पर अपना अड्डा जमाया जाय। अतः उन्होंने बम्बई के द्वीप को चुना जो उन दिनों उपेक्षित था।

जब सूरत के इस काण्ड की खबर औरंगज़ेब के कानों तक पहुँची तो वह क्रोध से काँप उठा। ऐसा साहस तो आज तक किसी ने नहीं किया था। इधर मराठों की हिम्मत भी बढ़ गयी। उनमें नये उत्साह एवं स्फूर्ति का संचार हो आया।

जयसिंह से मुठभेड़

सूरत से प्राप्त धन रायगढ़ पहुँचाकर शिवाजी अपनी माता जीजाबाई के दर्शन करने राजगढ़ जा रहे थे कि मार्ग में उन्हें अपने पिता राजा शाहजी की आकस्मिक मृत्यु का दुःखद समाचार मिला। वे राजगढ़ पहुँचे तो वहां का सारा वायुमंडल शोक से भरा हुआ था। शाहजी कर्नाटक में बीजापुर के सरदार थे। बिदनूर पर अधिकार करके वे बेंगलूर लौट रहे थे। रास्ते में तुगंभद्रा नदी के किनारे बसवपट्टण के पास होदिकेरे में उनका पड़ाव था। वहां उन्होंने सुना कि पास में कोई शेर आया है। अतः वे शिकार के मोह को न रोक सके। वे घोड़े पर सवार होकर जंगल में पहुँचे। दुर्भाग्य से घोड़े का पांव किसी गड्ढे में फँस गया और वह सवार के साथ नीचे गिर गया। थोड़ी ही देर बाद २३ जनवरी १६६४ को शाहजी के प्राण पखेरू उड़ गये। इस समय उनकी अवस्था लगभग ६२ वर्ष की थी।

यद्यपि पिछले कुछ वर्षों से शिवाजी और शाहजी में कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं रहा था, दोनों अपने-अपने कार्यक्षेत्रों में

स्वतन्त्र रूप से कार्य कर रहे थे, फिर भी पिता की छत्रछाया से वंचित होने का शिवाजी को बड़ा दुःख हुआ।

परन्तु माता जीजाबाई के शोक के आगे शिवाजी का दुःख कम ही था। जीजाबाई पर तो दुःख का पहाड़ ही टूट पड़ा था। उनका सुहाग लुट गया था। लगभग ५०-५२ वर्षों से जिस विवाहसूत्र ने उन दोनों को दूर रहते हुए भी एक साथ बांध रखा था, उसके टूटते ही जीजाबाई का सारा जीवनानंद नष्ट हो गया। यद्यपि पिछले कई वर्षों से शाहजी अपनी द्वितीय पत्नी तुकाबाई और उनके बेटे व्यंकोजी के साथ ही रहते थे और एक तरह से जीजाबाई और शिवाजी के साथ उन्होंने अन्याय ही किया था, फिर भी जीजाबाई तो भारतीय नारी थीं। अतः उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर उन्होंने सती होने का विचार किया, परन्तु शिवाजी ने अपने प्रेम के बल पर उन्हें रोक लिया।

शाहजी और शिवाजी के बीच कैसे सम्बन्ध थे, यह एक ऐसा विषय है जिसके बारे में अभी तक इतिहास चुप्पी साधे है। स्वराज्य स्थापना के शिवाजी के प्रारंभिक कार्यों में शाहजी से उन्हें पर्याप्त सहयोग मिलता रहा। उनकी शिक्षा-दीक्षा का भी अलग प्रबन्ध शाहजी ने कर दिया था। शिवाजी के विद्रोह के कारण शाहजी को बीजापुर वालों का रोष भाजन भी बनना पड़ा था, पर आगे चलकर उनका सहयोग स्पष्टरूपेण कहीं दिखाई नहीं देता। इतना ही नहीं, सन् १६५८ ई० में तो उन्होंने शिवाजी के कामों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने से स्पष्ट इन्कार कर दिया और अपने को आदिलशाह का विश्वस्त सेवक बताया। उनकी विश्वास-पात्रता को आदिलशाह ने स्वीकार भी किया था। २७ मई

सन् १६५८ के दिन आदिलशाह ने शाहजी को लिखा था—"बादशाह सलामत को मालूम हुआ है कि शिवाजी के राजद्रोह एवं उद्धतपन के लिये आपको दोषी समझा जायगा, इस आशंका से आप डरे हुए हैं, किन्तु बादशाह को यह पूरी तरह ज्ञात है कि आप हमारे प्रति निष्ठावान् हैं और शिवाजी का बर्ताव ही अनुचित है। इसलिए उसके अपराधों के लिये आपको उत्तरदायी नहीं समझा जायगा। आपको जो सम्मान इस दरबार से मिलता है वह आगे भी पूर्ववत् मिलता रहेगा।" इससे ऐसा लगता है कि कम-से-कम बाहरी तौर पर तो शिवाजी और शाहजी में कोई सहयोग नहीं रहा था। वैसे शाहजी भी बीजापुर वालों की सेवा में बड़ी प्रतिष्ठा से रहे, पर अफ़ज़लखाँ आदि के आक्रमणों के समय शाहजी ने शिवाजी की कोई सहायता की हो, ऐसा भी नहीं लगता। संभव है, वे कर्नाटक में जाने के बाद विलासी हो गये हों और अपनी अन्य दो पत्नियों तथा कई उपपत्नियों के सहवास में शिवाजी और जीजाबाई को उन्होंने बिलकुल भुला दिया हो। यह भी संभव है कि शिवाजी के प्रयत्नों से उन्हें सहानुभूति हो, पर उनके पक्ष में रहने से आने वाली आपत्तियों का सामना करने की हिम्मत उनमें न रही हो। परन्तु राजनैतिक सम्बन्ध न रहने पर भी वे व्यक्तिगत सम्बन्ध तो रख ही सकते थे, और उन दिनों राजनैतिक सम्बन्ध आज के जैसे तीव्र भी नहीं होते थे। अतः शिवाजी एवं जीजाबाई के साथ शाहजी का पत्र-व्यवहार, भेंट-मुलाकातें आदि चलती रही हों तो भी कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। इसी कारण बीजापुर वाले शाहजी को कुछ सन्देह की दृष्टि से देखते हों, तो यह भी स्वाभाविक ही था।

यह बात स्पष्ट है कि शाहजी ने कर्नाटक में अपनी

जो जागीर बनायी थी, उसका उपयोग आगे चलकर मराठों के राज के लिए बहुत हुआ। शिवाजी के द्वितीय पुत्र राजाराम को यहीं जिंजी के किले में आश्रय मिला। शिवाजी के सौतेले भाई व्यंकोजी द्वारा स्थापित तंजौर का राज्य तो अभी कुछ समय पूर्व तक भी मौजूद था।

शाहजी के कारण बीजापुर वालों के सम्पर्क में आते समय शिवाजी को कुछ संकोच होना स्वाभाविक था। उनकी मृत्यु से इसका कोई कारण शेष न रहा। इस दृष्टि से शाहजी की मृत्यु बीजापुर वालों के लिये भी एक तरह से हानिकर ही सिद्ध हुई।

शिवाजी को चारों ओर से घेर कर परास्त करने के विचार से औरंगज़ेब ने बीजापुर वालों पर दबाव डाला। अतः उसी वर्ष बरसात के बाद आदिलशाह ने खवासखाँ नामक अपने सरदार को शिवाजी के जीते हुए प्रदेश पर अधिकार करने के लिए भेजा। इस लड़ाई में खवासखाँ की सहायता करने के लिए आदिलशाह ने मुधोल के बाजी घोरपड़े और कुड़ाल के लखम सावंत की नियुक्ति की थी। ये तीनों यदि मिल जाते तो उनको हराना कठिन हो जाता, अतः तीनों को अलग-अलग ही समाप्त करने की योजना शिवाजी ने बनायी। घोरपड़े और सावंत शाहजी एवम् शिवाजी से वर्षों से शत्रुता करते आ रहे थे। इसी बाजी घोरपड़े ने मुस्तफ़ाखाँ और अफ़ज़लखाँ से मिलकर धोखे से शाहजी को कैद किया था। तब से शिवाजी और उनकी माता जीजाबाई उससे बदला लेने के लिए बेचैन थे। अब वह अवसर आ गया। उन्होंने सीधे मुधोल पर धावा बोल दिया। बाजी घोरपड़े भी बला का वीर था, इसलिये घमासान युद्ध हुआ। पर

शिवाजी की तैयारी बहुत अच्छी थी, इसलिए उसकी एक न चली। शिवाजी ने बाजी को तलवार के घाट उतार दिया। बाजी के दूसरे सगे सम्बन्धी और रिश्तेदार भी मारे गए। अन्त में शिवाजी ने बाजी का सारा प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया और अपनी तरफ से बाजी के बेटे मालोजी घोरपड़े को वहाँ का शासक नियुक्त किया।

मुधोल से निकल कर शिवाजी ने खवासखाँ पर धावा बोला। खवासखाँ बाजी घोरपड़े की प्रतीक्षा कर रहा था। उस पर शिवाजी ने भील, गोंड, कोली आदि सैनिकों को लेकर इतना प्रबल आक्रमण किया कि उसे किसी तरह जान बचाकर बीजापुर भाग जाना पड़ा। इस लड़ाई में शिवाजी के छोटे सौतेले भाई व्यंकोजी शत्रुओं के पक्ष से लड़ने आये थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् दोनों भाई इस तरह रणक्षेत्र में आमने सामने खड़े हुए थे।

खवासखाँ को भगाने के बाद शिवाजी वाडीकर सावंत के पीछे पड़े। उन्होंने उसका लगभग सारा इलाका जीत लिया। तब वह गोवा के पुर्तगालियों के आश्रय में चला गया। शिवाजी ने गोवा पहुँच कर पुर्तगालियों पर भी दबाव डाला। तब पुर्तगालियों ने शिवाजी से संधि करके उनको भेंट अर्पण की। अन्ततः चारों ओर से निराधार होकर सावंत ने शिवाजी के साथ उनकी शर्तों पर संधि कर ली। अपना आधा राज्य शिवाजी को देकर उसने फिर एक बार शिवाजी का मांडलिक बनना स्वीकार कर लिया।

जलसेना को समर्थ बनाने की दृष्टि से शिवाजी ने पश्चिमी किनारे पर मालवण नगर के पास कुरटें नाम के एक छोटे से द्वीप पर "सिन्धु दुर्ग" नाम का एक मज़बूत समुद्री

किला बनाने का निश्चय किया। उन्होंने २५ नवंबर १६६४ के दिन उस गढ़ की नींव डाली। आज भी सिन्धुदुर्ग मालवण के पास खड़ा है। शिवाजी ने लगभग एक महीने तक स्वयं वहां रहकर किले के निर्माण कार्य की देख-रेख की और बाद में अन्य प्रबन्ध करके वे कारवार के दक्षिण में स्थित बसरूर नाम के धनवान् बन्दरगाह को लूटने के लिए अपनी जलसेना सहित निकल पड़े। इस सेना में लगभग छः हज़ार सैनिक, तीन जंगी जहाज़ और ८५ छोटे जहाज़ थे। शिवाजी का यह पहला ही समुद्री अभियान था। रास्ते में गोवा पड़ता था, परन्तु पुर्तगाली सेनाओं ने शिवाजी को रोकने की चेष्टा नहीं की। वे सीधे बसरूर जा पहुँचे और एक ही दिन में उस बन्दरगाह से अपार धन जमा करके वापस महाबलेश्वर के दर्शनार्थ गोकर्ण लौट आये। वहां शिवजी के दर्शन करके वे अंकोला नामक बन्दरगाह में उतरे और वहां से समुद्र-मार्ग से जलसेना को महाराष्ट्र भेजकर और स्वयं अपने साथ चार हज़ार सैनिकों को लेकर स्थलमार्ग से वापस लौटने लगे। रास्ते में किसी ने उनका विरोध नहीं किया अर्थात् अपनी पैंतीसवीं वर्षगाँठ के दिन शिवाजी महाराष्ट्र के दक्षिणी सिरे के नगर कारवार में थे। उन दिनों कारवार भी एक अच्छा व्यापारी केन्द्र था, अतः शिवाजी ने लगे हाथों उसे भी लूट लेने का विचार किया। पर वहां के सूबेदार ने शहर के व्यापारियों से एक बड़ी रकम जमा करके शिवाजी की सेवा में अर्पित की। इसलिए वहां कोई उपद्रव नहीं हुआ। शिवाजी वहां दो दिन ठहर कर आगे बढ़े। इस प्रकार सूरत से लेकर बसरूर कारवार तक के सागर-तट पर शिवाजी की धाक बैठ गयी।

इसके बाद उन पर एक महान् संकट आया। यह संकट था मुगलसरदार मिर्ज़ा राजा जयसिंह का आक्रमण। इससे पहले शिवाजी ने शाइस्ताखाँ, जसवन्तसिंह, मुअज़्ज़म आदि का डटकर मुकाबला किया था। परन्तु जयसिंह के सामने उनकी एक न चली। उन्हें हथियार डालने पड़े और अत्यन्त अपमानजनक शर्तों पर सन्धि करनी पड़ी।

जयसिंह कछवाहा बड़ा ही अनुभवी सेनापति और उससे भी अधिक धूर्त राजनीतिज्ञ था। मुगल सेना के साथ रहकर मध्य एशिया के बल्ख से लेकर सुदूर दक्षिण के बीजापुर तक और पश्चिम में कन्धार से लेकर पूर्व में मंघेर तक मुगल साम्राज्य के प्रत्येक भाग में जयसिंह ने अनेकों युद्ध किये थे और प्रत्येक बार वह विजयी हुआ था। जीवन में उसने कभी हार नहीं खायी थी। वह १२ वर्ष की आयु में मुगलसेना में भर्ती हुआ था। तब से लेकर अब तक वह मुगलों की सत्ता का विस्तार करने में लगा हुआ था। शाहजहाँ के दीर्घकालीन शासन में शायद ही ऐसा कोई वर्ष बीता हो जब इसने किसी युद्ध में भाग न लिया हो।

औरंगज़ेब ने शिवाजी को नष्ट करने का भार जयसिंह पर सौंपा। परन्तु जैसा कि औरंगज़ेब का स्वभाव था, हिन्दू जयसिंह को हिन्दू शिवाजी के सम्पर्क में भेजने में उसने संदेह भी किया और जयसिंह पर दृष्टि रखने के लिए दिलेरखाँ नामक एक पठान को भी साथ भेजा। इस नियुक्ति की घोषणा उसने अपनी सैंतालीसवीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में की। ३० सितम्बर १६६४ को दिलेरखाँ के अतिरिक्त औरंगज़ेब ने दाऊदखाँ कुरैशी, राजा रार्यासह सिसोदिया, एहतिशामखाँ शेखज़ादा कुबदखाँ, राजा सुजानसिंह बुंदेला, जयसिंह का

पुत्र कीरतसिंह कछवाहा, मुगलों से आ मिला हुआ बीजापुरी सरदार मुल्ला याहिया नवायत, पूरणमल बुन्देला आदि दूसरे सरदारों को भी जयसिंह के साथ कर दिया। प्रारम्भ में इन सब की सेना लगभग १४ हज़ार थी।

अब तक के मुगल सरदारों के अनुभवों से जयसिंह ने अपने साधनों में पर्याप्त परिवर्तन कर लिया था। उसने पहली बात यह की कि एक बार दिल्ली से निकल पड़ने के बाद रास्ते में एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाने दिया। प्रायः शाही सेनाएं बड़े आराम से हाथी की तरह चलती हुई मार्ग तय करती थीं, जिससे शिवाजी की सेनाओं को तैयार होने के लिए समय मिल जाता था। पर जयसिंह ने ९ जनवरी १६६५ को नर्मदा नदी पार की और १९ जनवरी को वह बुरहानपुर जा पहुँचा। वहां ३० जनवरी तक रुक कर उसने सेना एवं सामान का प्रबन्ध ठीक किया। अब तक उसकी सेना की संख्या बढ़कर ३० हज़ार हो गयी थी और वह बढ़ती ही जाती थी। बुरहानपुर से वह १० फरवरी को सीधा औरंगाबाद पहुँचा जो कि मुगलों की दक्षिणी राजधानी थी। वहां शाहज़ादा मुअज्ज़म तथा अन्य अधिकारियों से मिलकर वह तेजी से आगे बढ़ा और तारीख ३ मार्च १६६५ को पूना पहुँच गया। यहां उसने महाराजा जसवन्तसिंह से सेनापति-पद के अधिकार-सूत्र अपने हाथों में लिए और शिवाजी को घेरने का आयोजन करने में संलग्न हो गया।

जयसिंह जानता था कि शिवाजी, बीजापुर और गोलकुण्डा यदि मिल जायँ तो उनको परास्त करना कठिन हो जायगा। अतः उसने उनमें फूट डालने की चेष्टा आरम्भ की। उसने बड़ी ही चतुराई के साथ आदिलशाह को यह आशा दिलायी

कि यदि वह मुगलों की सहायता करके यह प्रमाणित कर देगा कि शिवाजी के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, तो आदिलशाह के प्रति औरंगज़ेब की अप्रसन्नता को दूर कर बीजापुर से वसूल होने वाली टाँके की रकम में वह कमी करा सकेगा। इसके अतिरिक्त उसने अफ़ज़लखाँ के बेटे फ़ाज़लखाँ, कर्नाटक के सरदारों और जावली के चन्द्रराव मोरे के शेष रिश्तेदारों को भी शिवाजी के विरुद्ध उभाड़ा। इतना ही नहीं, नक़द रिश्वत एवं उच्च पद का लालच दिखा कर स्वयं शिवाजी के अनुयायियों को भी वश में करने का प्रयत्न किया। साथ ही अपने साथ लाये हुए इतालवी तोपची निकोलाओ मनुची, फ्रांसिस्को डीमेलो और डायगो डीमेलो जैसे गोरे सरदारों को भेजकर गोवा-बसई के पुर्तगाली, वेंगुर्ला के डच, सूरत के अंगरेज और ज़ंजिरा के सिद्दी आदि से शिवाजी की जलसेना को खत्म कर डालने की बात चलायी। मई में उसने औरंगज़ेब को लिखा कि हमारी फ़ौज इस समय पूना में है, इसलिए कोंकण के सागर तट के विषय में शिवाजी निश्चिंत है। ऐसे अवसर पर यदि गुजरात की तरफ़ से कोई जलसेना पश्चिमी किनारे पर हमला करे, तो शिवाजी के इलाके से हमें बड़ी लूट मिल सकती है।

बीजापुर से उसने बातचीत तो चलायी पर उन पर उसने विश्वास नहीं किया। वह डरता था कि इस पर भी शिवाजी और बीजापुर की सेनाएँ मिल न जायँ, इसलिए उसने पूना से निकल कर शिवाजी और बीजापुर राज्यों के बीचों-बीच, सासवड़ में पड़ाव डाला। सासवड़ से ६ मील दक्षिण में पुरन्धर का मज़बूत किला है। इस किले के दो भाग हैं। तलहटी से २१०० फीट ऊँचाई पर जो परकोटा है उसे 'माची'

कहा जाता है। उसके ऊपर चारों ओर से बहुत ही कठोर चट्टानों पर खड़े भाग को 'बाले किला' अर्थात् ऊपर का या मुख्य किला कहा जाता है। इस मुख्य किले में प्रवेश करने के लिए एक ही मार्ग था। वह जिस दरवाज़े से होकर जाता था उसे बन्द कर देने पर अन्दर प्रवेश करना किसी के लिए भी संभव नहीं था। ऐसे मजबूत किले का दिलेरखाँ ने ३१ मार्च १६६५ को घेरा डाला। इस तरह जयसिंह और शिवाजी की सेनाओं में युद्ध छिड़ गया।

पुरन्धर का युद्ध और सन्धि

पुरन्धर के पास, उससे लगभग सटा हुआ एक और क़िला है। उसका नाम है रुद्रमाल या वज्रगढ़। वज्रगढ़ पुरन्धर से थोड़ा नीचा है। उन दोनों में एक बड़ी घाटी है, जिसे 'भैरवखिण्ड' अर्थात् 'भैरवघाटी' कहा जाता है। एक अनुभवी सेनानायक की भान्ति जयसिंह ने यह जान लिया कि पहले वज्रगढ़ पर अधिकार करके फिर उस पर से पुरन्धर पर गोलाबारी करने से पुरन्धर पर अधिकार करना अधिक सुगम होगा। अतः मुगलों ने पहले अपना सारा ध्यान वज्रगढ़ पर केन्द्रित किया। उन्होंने अपनी तीन बड़ी-बड़ी तोपों के बल पर वज्रगढ़ की दीवारों को तोड़ दिया। गढ़ में केवल तीन सौ मराठा सैनिक थे। फिर भी उन बहादुरों ने लगभग दो सप्ताह तक मुगलों का सामना किया और उनके कई सौ सैनिकों को मौत के घाट उतारा। मगर चालीस हज़ार सुसज्जित सैनिकों के सामने वे कहां तक टिक सकते थे? आख़िरकार हार कर उन्हें हथियार डाल देने पड़े। पुरन्धर को जीतने की कुंजी मुगलों के हाथ आ गयी।

वज्रगढ़ पर अधिकार होते ही दिलेरखाँ ने वहां से अपनी तोपों द्वारा पुरन्धर पर आग उगलना आरम्भ किया। अंततः वह पुरन्धर के निचले परकोटे तक पहुँच गया। उस समय पुरन्धर का मुरारबाजी देशपांडे नाम का एक महापराक्रमी कायस्थ सरदार था। उसने भी गढ़ को ख़तरे में देखकर शत्रु पर ज़ोर का हमला बोल दिया। पांच हज़ार पठानों पर वह अपने सात सौ मराठों को लेकर टूट पड़ा। एक तरह से उसका वह जौहर ही था। पठानों को काटता हुआ मुरारबाजी सीधे दिलेरखाँ के तंबू तक पहुँच गया। लड़ते-लड़ते मुरारबाजी की ढाल टूट गयी। तब उसने बायें हाथ में चद्दर लपेट कर दुश्मन के दुस्सह घाव झेलना आरम्भ किया। उसने और उसके मावलों ने अनेक बहेलिये पैदलों के अतिरिक्त ५०० पठानों को भी मार डाला। मुरारबाजी के इस अद्भुत पराक्रम एवं साहस को देखकर दिलेरखाँ मुग्ध हो गया और उसने जीवन-दान के साथ ही उसे अपने अधीन एक उच्च पद पर नियुक्त करने का वचन देकर आत्मसमर्पण करने के लिये कहा। परन्तु इस अपमानजनक प्रस्ताव से क्रुद्ध होकर उत्तर में उसने दिलेरखाँ पर आक्रमण किया। उसकी तलवार का एक घाव दिलेरखाँ के शरीर में लग गया। इस प्रकार घमासान युद्ध चल रहा था कि अचानक दिलेरखाँ के बाण से मुरारबाजी का सिर कट गया। एक महान् वीरपुरुष स्वराज्य के लिये बलिदान हो गया। दिलेरखाँ के मुँह से भी ये शब्द निकले—
"या ख़ुदा! कैसा ग़ज़ब का सिपाही तूने पैदा किया था!"
कुल मिलाकर कोई ३०० मराठा सैनिक मुरारबाजी के साथ उस दिन काम आये, पर वे अपने साथ दुगुने-तिगुने शत्रु सैनिकों के प्राण लेते गये। शेष मराठे किले में लौट गये। वे

अपने साथ अपने प्रिय सेनापति की मृत देह भी ले गये।

मुरारबाजी की मृत्यु के अनन्तर मुगलों को ऐसा लगा कि पुरन्धर पर अधिकार होने में अब बिलकुल देर नहीं लगेगी। पर शीघ्र ही उन्होंने देखा कि वह उनका भ्रम था। मुरारबाजी का देहान्त हो जाने पर भी किले के अन्दर के मराठा सैनिक दिलेरखाँ की सेना का मुकाबला सफलता के साथ करते रहे। किन्तु वे इतनी बड़ी सेना का सामना कब तक करते ? किसी-न-किसी दिन उन्हें आत्मसमर्पण करना ही पड़ता। उस किले में बड़े-बड़े मराठा अधिकारियों के कुटुम्बी-जन रहते थे। अतः यदि मुगल उस किले पर अधिकार कर लेते तो वे लोग बन्दी हो जाते, मारे जाते या कम-से-कम अपमानित तो अवश्य किये जाते, इसलिये शिवाजी ने सोचा कि अब और अधिक खींचना ठीक नहीं होगा। अपनी प्रतिष्ठा के लिए वे अपने अधिकारियों के परिवारों को होमना नहीं चाहते थे।

पुरन्धर के इस संग्राम के साथ ही मुगलों के सरदारों ने शिवाजी के राज्य में निःसीम लूट मार मचा दी थी। निर-पराध किसानों, उनकी स्त्रियों व बाल-बच्चों को मारना, उनका अपमान करना, उनके जानवरों-पशुओं को भगा कर उनकी खेती में बाधा डालना, अनाज और पैसा लूटना आदि अत्याचार अपनी चरम सीमा तक पहुँच गये थे। अपनी प्रजा की यह यंत्रणा शिवाजी से देखी नहीं गयी। 'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पण्डितः' की उक्ति के अनुसार सर्वनाश को टालने के लिये उन्होंने सन्धि की बातचीत आरम्भ की।

जयसिंह के सम्बन्ध में शिवाजी को बड़ा ही कटु अनुभव हुआ। उन्होंने सोचा था कि हिन्दू होने के नाते जयसिंह उनके

'गो-ब्राह्मण-प्रतिपालन' के उद्देश्य के प्रति सहानुभूति रखेगा और अन्य मुस्लिम सरदारों की अपेक्षा अधिक नरमी से पेश आयगा; पर अनुभव उलटा ही हुआ, उसने मुसलमानों से भी अधिक क्रूरतापूर्ण व्यवहार शिवाजी के साथ किया। राणा प्रताप की जाति का होते हुए भी उसमें स्वतंत्रता एवं स्वाभिमान का लेश भी नहीं था! मुगलों की दासता में ही उसे आनन्द था और उसने शिवाजी से बातचीत करने से तब तक इन्कार किया जब तक कि शिवाजी ने यह स्वीकार नहीं कर लिया कि वे भी उसी की तरह औरंगज़ेब के गुलाम बन जायंगे। और यह स्वाभाविक भी था। एक गुलाम को तब तक कैसे संतोष हो सकता है, जब तक दूसरे स्वतन्त्र एवं स्वाभिमानी व्यक्ति उसी की तरह गुलाम न बन जायँ?

पर शिवाजी कों तो सर्वनाश से बचना था। अतः मान-अपमान का विचार किये बिना ११ जून १६६५ को वे जयसिंह से मिलने गये। वहां जाते ही उन्होंने अपने पुरन्धर स्थित सैनिकों को आत्मसमर्पण करने की आज्ञा दी। उसके अनुसार ता० १२ जून को क़िले पर के सारे व्यक्ति नीचे उतर आये और मुगल सेना ने उस पर अधिकार कर लिया। इस समय शिवाजी मुगलों के चंगुल में बहुत ही बुरी तरह फँसे हुए थे। यदि वे कुछ आनाकानी करते तो उनका किया हुआ चौपट हो जाता। फिर भी वे अन्त तक अपने स्वाभिमान एवं राज्य को बचाने की चेष्टा करते रहे, जिसके फलस्वरूप वे थोड़ा-बहुत बचा भी सके।

दो-तीन दिन तक बातचीत करने के बाद निम्नलिखित शर्तों पर सन्धि हो गयी—

१. शिवाजी अपने क़िलों में से निम्नलिखित २३ क़िले

और उनके आसपास का चार लाख होन (स्वर्ण मुद्राओं) की वार्षिक आमदनी वाला प्रदेश मुगलों को दे दें—

१. (क) देश भाग में स्थित क़िले—

(१) कोंडाना (सिंहगढ़), (२) रुद्रमाल यानी वज्रगढ़, (३) पुरन्धर, (४) रोहिड़ा, (५) लोहगढ़, (६) ईसागढ़, (७) तुंग, (८) निकोना, (९) खंडा गला (कदकड़ा)।

(ख) कोंकण में स्थित क़िले—

(१०) माहुली, (११) भुंडारदुर्ग, (१२) पलसगढ़ (१३) कोज, (१४) मुरंजन (राजधानी), (१५) नेरदुर्ग (नरदुर्ग), (१६) मरकगढ़ (मार्गगढ़) (१७) माजिकगढ़, (१८) कर्नाला, (१९) अंकोला, (२०) बख़्तगढ़, (२१) माजगढ़, (२२) सोनगढ़, (२३) सागरगढ़।

२. राजगढ़, तोरणा, रायगढ़, तलेगढ़, घोसाला, महाड़गढ़ (महागढ़), कुँवारी, पाल, उदयदुर्ग, लिंगणगढ़ और भोरप (प्रतापगढ़) ये बारह क़िले तथा उनके आसपास का केवल एक लाख होन की वार्षिक आय वाला प्रदेश शिवाजी के पास रहे। वह भी इस शर्त पर कि वे मुगल साम्राज्य के प्रति निष्ठावान् बने रहेंगे और साम्राज्य की सेवा करते रहेंगे।

३. दक्खिन का शाही सूबेदार जो भी हुक्म दे, शिवाजी को उसका पालन करना होगा।

४. शिवाजी के पुत्र संभाजी को बादशाह की ओर से पांच हज़ार सवारों के नेतृत्व का पद दिया जायगा। किन्तु वह छोटा है इसलिये उसके प्रतिनिधि के तौर पर नेताजी पालकर दक्खिन के सूबेदार की नौकरी में रहेगा।

स्पष्ट है कि ये शर्तें शिवाजी के लिये अत्यधिक अपमान-जनक थीं। फिर भी थोड़ा-बहुत प्रदेश अपने पास रखने में शिवाजी को जो सफलता मिली, उसके कारणों को भी जान लेना आवश्यक है। यदि ये कारण न होते तो संभव है जयसिंह शिवाजी को पूरी तरह कंगाल एवं गुलाम बनाए बिना न छोड़ता। ये कारण इस प्रकार थे—

(१) शिवाजी ने मुगलों के विरुद्ध बीजापुर के साथ बातचीत शुरु की थी, जिसकी खबर जयसिंह को लगी थी। यदि जयसिंह शिवाजी को और अधिक कसकर बांधने की चेष्टा करता तो संभव है वह बीजापुर की सहायता से मुगलों को सताने लगता। अतः शिवाजी को सीमा से अधिक नाराज़ करना जयसिंह ने उचित नहीं समझा। इस सम्बन्ध में उसने औरंगज़ेब को लिखा था, "मुझे अपने गुप्तचरों से पता चला है कि आदिलशाह बाहरी तौर पर हमारे साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध दिखाकर अन्दर से शिवाजी से मिला हुआ है। यह ठीक है कि शिवाजी एवं आदिलशाह दोनों का सामना करना हमारी सेना के लिए असंभव नहीं है, फिर भी शिवाजी को बीजापुर से अलग रखने में ही मैंने बुद्धिमत्ता समझी है।" अर्थात् दोनों शत्रुओं के साथ एक ही समय में युद्ध करने से खर्च बढ़ जाता और समय भी नष्ट होता।

(२) यदि जयसिंह ने शिवाजी के लिए बाहर निकलने का कोई मार्ग न रखा होता तो कमरे में बन्द की हुई बिल्ली की तरह शिवाजी जान पर खेलता और अपनी शक्तिभर मुगलों को हानि पहुँचाने की चेष्टा करता। इस सम्बन्ध में जयसिंह को गुप्त रूप से खबर मिली थी कि शिवाजी ने अवसर आने पर सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट करके मुगलों पर टूट

पड़ने की तैयारी कर रखी है। इस बात से जयसिंह और उसके साथी बहुत डरते थे।

(३) तीसरी बात यह थी कि वर्षा के दिन समीप आ रहे थे। यदि वर्षा आरम्भ होने से पूर्व सन्धि न होती तो फिर दक्षिण की वर्षा से अनभिज्ञ मुगल सेना की बड़ी दुर्गति होती, जिससे सब मुगल सेना-नायक बचना चाहते थे।

इन्हीं कारणों से शिवाजी को थोड़ी-बहुत सुविधाएं मिल सकीं, अन्यथा वे मुगल सेना की चक्की में पूरी तरह पिस जाते और फिर भारतीय स्वराज्य का उनका स्वप्न अधूरा ही रह जाता। बाद की घटनाओं ने यह प्रमाणित किया कि शिवाजी का झुकना अत्यन्त आवश्यक था। इतने संकट में भी शिवाजी ने एक चतुराई यह की कि उन्होंने अपने को मुगलों की दैनंदिन नौकरी से मुक्त रखा और अपने बेटे को ही पांच हज़ार सवारों की अध्यक्षता तथा जागीर दिलवाई। इससे उनके स्वाभिमान की रक्षा हुई और वे राजनीति के दाँव खेलने के लिए स्वतन्त्र रहे।

पुरन्धर की इस सन्धि से शिवाजी को भूतपूर्व निज़ामशाही का लगभग सारा प्रदेश मुगलों को देना पड़ा; उसके अतिरिक्त उनके पास आदिलशाह का भी काफी प्रदेश था। उन्होंने सोचा कि जब जयसिंह बीजापुर के राज्य को जीत लेगा तब इस प्रदेश के विषय में झंझट खड़ा होगा, अतः उन्होंने उस सम्बन्ध में अपनी यह मांग पेश की कि बीजापुर का कोंकण वाला चार लाख होन वार्षिक आय का तथा देश वाला पांच लाख होन वार्षिक आय का प्रदेश मुझे मिल जाय तो मैं मुगल सम्राट् को ४० लाख होन १३ वार्षिक किश्तों में भेंट करूँगा। जयसिंह को यह मांग स्वीकार थी। परन्तु औरंगज़ेब ने उसे

स्वीकार करने में बड़ी टालमटोल की और ५ सितम्बर १६६५ को इस सम्बन्ध में उसने जो आज्ञापत्र भेजा वह बिलकुल सन्तोषजनक नहीं था; उसमें कहा गया था कि कोंकण वाला इलाका मुगलों के अधीन ही रहेगा और यदि जयसिंह को बीजापुर पर अधिकार करने में शिवाजी से सन्तोषजनक सहायता मिलेगी तो देश वाला इलाका उन्हें दिया जायगा अन्यथा नहीं।

शिवाजी को इतना अपमानित करके भी संभवतः जयसिंह को सन्तोष नहीं हुआ था। आगे चलकर शिवाजी औरंगज़ेब के शिकंजे से बड़ी चतुराई से छूट कर जब दक्षिण पहुँचे और उन्होंने मुगलों को सताना शुरु किया तब जयसिंह ने तंग आकर औरंगजेब को लिखा, "अगर आपकी आज्ञा हो तो मैं किसी उपाय से इस दुष्ट शिवाजी को खत्म कर डालूं। मैं अपने बेटे के लिए शिवाजी की बेटी का प्रस्ताव करूँगा। हम ऊँचे कुल के राजपूतों के साथ रिश्ता जोड़ने की उसकी बड़ी इच्छा है। उस सिलसिले में उससे भेंट होगी ही। उस समय मैं उसका सिर उड़ा दूँगा।"

इससे पता चलता है कि जयसिंह के दिल में कितना विष भरा हुआ था। ऐसे पाप की सजा भला इसे कैसे न मिलती? शीघ्र ही उसे वह मिल गयी। जयसिंह ने बीजापुर और गोलकुण्डा के राज्य जीतने की भरसक चेष्टा की, मगर उसे मुँह की खानी पड़ी। इससे औरंगज़ेब उससे नाराज़ हो गया। इसी बीच में शिवाजी भी आगरा के किले से निकल भागे थे, जिसके लिए औरंगजेब ने जयसिंह को भी जिम्मेदार ठहराया और उसके स्थान पर फिर से अपने बेटे मुअज्ज़म को दक्खिन का सूबेदार बना भेजा। इतना ही नहीं, मुअज्ज़म को

सूबेदारी के अधिकार सौंपकर जयसिंह वापस दिल्ली के लिए निकला तो रास्ते में, बुरहानपुर में, औरंगज़ेब ने उसे ज़हर देकर मरवा डाला। इस प्रकार शिवाजी के साथ उसने जो बुरा बर्ताव किया था उसकी सज़ा उसे दो ही साल के अन्दर मिल गयी और 'इस हाथ दे उस हाथ ले' वाली कहावत चरितार्थ हो गयी।

इस सम्बन्ध में इतालवी सरदार निकोलाओ मनुची ने, जो मुगलों के तोपखाने के प्रमुख की हैसियत से जयसिंह के साथ दक्षिण गया था, लिखा है, "औरंगज़ेब के आदेश के अनुसार राजा जयसिंह को बुरहानपुर में ज़हर देकर मार डाला गया। यह खबर सुनकर औरंगज़ेब का दिल ठण्डा हुआ क्योंकि वह उस बलवान् सरदार से डरता था। जब औरंगज़ेब ने शुजा पर आक्रमण किया था तब कई बार वह जयसिंह के चंगुल में फँसा था। उस समय जयसिंह चाहता तो उसे बड़ी आसानी से मार सकता था। पर उसने वैसा नहीं किया। वह सदैव औरंगज़ेब पर उपकार ही करता रहा। उसी ने दिल्ली को बचाया था। दारा के बेटे सुलेमान शिकोह को वही पकड़ लाया था। जयसिंह के कारण ही शिवाजी का दमन हो सका था। इन सब उपकारों का पुरस्कार उसने उसकी हत्या के रूप में दिया। जसवंतसिंह का भी उसने ऐसा ही बुरा हाल किया।"

औरंगज़ेब से भेंट और कैद

शिवाजी महाराज औरंगज़ेब से मिलने आगरा क्यों गये थे इसका कोई सन्तोषजनक उत्तर इतिहास नहीं देता। अलग-अलग इतिहासकारों ने इस प्रश्न के अलग-अलग उत्तर दिये हैं। वैसे पुरन्धर की सन्धि के समय से ही यह बात चल रही थी कि औरंगज़ेब से साक्षात्कार करने शिवाजी दिल्ली-आगरा जायँ; पर स्वयं शिवाजी और औरंगजेब इस भेंट के लिए उत्सुक नहीं थे, बल्कि वे बहुत-कुछ अनिच्छुक ही थे। शिवाजी इसलिए औरंगज़ेब के पास नहीं जाना चाहते थे कि औरंगज़ेब पर उन्हें विश्वास नहीं था। जिस आदमी ने स्वयं अपने जन्मदाता पिता और सगे भाइयों के साथ धोखा किया था, वह भला शिवाजी जैसे शत्रु के साथ धोखा करने से कैसे चूकता? फिर सह्याद्रि के इलाके में जो सुरक्षा थी वह उत्तर भारत के खुले मैदानों में नहीं हो सकती थी, और सबसे बड़ा कारण यह था कि उन्होंने आज तक किसी की नौकरी नहीं की थी। गुलाम की तरह किसी के आगे झुककर सलाम बजाने की उन्हें आदत नहीं थी। उधर औरंगज़ेब भी

शिवाजी से प्रत्यक्ष में भेंट करना नहीं चाहता था। उसे डर था कि कहीं वह जादूगर अफ़ज़लखाँ की तरह उसकी भी अंतड़ियां न निकाल दे !

लेकिन फिर भी शिवाजी ने आगरा जाना स्वीकार कर लिया और औरंगज़ेब ने भी उनके आने की स्वीकृति दे दी। इसका कारण था, जयसिंह का आग्रह। वह चाहता था कि शिवाजी और औरंगजेब आपस में मिलें। शायद उसने सोचा हो कि शिवाजी और औरंगज़ेब की भेंट से उन दोनों में मित्रता हो जायगी; जिससे औरंगज़ेब को दक्षिण भारत जीतने में सुविधा होगी। संभवतः वह औरंगज़ेब से इस बात पर प्रशंसा पाना चाहता हो कि शिवाजी जैसे विद्रोही को उसने बादशाह का सेवक बना दिया। इन्हीं दिनों शिवाजी का सेनापति शिवाजी से रूठ कर बीजापुर वालों से जा मिला था। आदिलशाह ने उसे चार लाख होन का पुरस्कार देकर अपने सरदारों में शामिल कर लिया था। उसने मुगल सेना पर जोरदार हमले करके उसे हैरान कर दिया था। जयसिंह को लगा कि यदि शिवाजी भी इसी तरह आदिलशाह से जा मिले तो मुगलों का अन्त ही हो जायगा। अतः उसने सोचा कि शिवाजी को कुछ दिनों के लिए उत्तर भारत भेजा जाय और वहां से मुगलों का प्रतिनिधि बनवाकर ही दक्षिण में लाया जाय, जिससे दक्षिण की मुगल-सत्ता अधिक स्थिर हो सके। उसके मन में यह भी शंका थी कि यद्यपि शिवाजी और नेताजी पालकर झगड़ कर बाहरी तौर पर अलग हो गये हैं, फिर भी वे अन्दर से एक ही हैं और मुगलों का नाश चाहते हैं, इसलिये वह बार-बार औरंगज़ेब को लिखता था कि—"हर कोशिश करके मैं शिवाजी को आपकी ख़िदमत में पेश करूँगा।"

बीजापुर की लड़ाई में शिवाजी और जयसिंह साथ थे। उस समय उन दोनों में इस बारे में काफ़ी बातचीत हुई। जयसिंह ने संभवतः शिवाजी को समझाने की चेष्टा की कि उनकी 'स्वराज्य' की कल्पना केवल एक मरीचिका थी, जिसके पीछे अपना जीवन बर्बाद करना पागलपन था। भला औरंगज़ेब जैसे महाप्रतापी सम्राट् के विरुद्ध कोई कैसे सिर ऊँचा करके खड़ा रह सकता था? उसने शिवाजी को यह भी लालच दिखाया कि यदि वे बादशाह से जाकर मिलें तो वह खुश होकर उनका सम्मान करेगा और उन्हें दक्षिण का सूबेदार बनाकर बीजापुर, गोलकुण्डा आदि सल्तनतों को जीतने के लिए धन और सेना भी पर्याप्त मात्रा में देगा। संभव है, इस लोभ ने शिवाजी को मोह लिया हो। उन्होंने सोचा हो कि मुगलों की सहायता से दक्षिण के मुस्लिम राज्यों को समाप्त कर देने के बाद जब उनकी सामर्थ्य बढ़ेगी तब फिर मुगलों के विरुद्ध विद्रोह करने पर औरंगज़ेब उनका बाल भी बाँका न कर सकेगा।

आगरा जाने में शिवाजी का और भी एक हेतु था। रायगढ़ के पास ही समुद्र में जंजीरा नामक एक समुद्री किला था, जिस पर एक सिद्दी सरदार का अधिकार था। कोंकण की सुरक्षा के लिये जंजीरा पर शिवाजी का अधिकार होना आवश्यक था। उन्होंने इस दृष्टि से कोशिशें भी की थीं परन्तु अब तक वे असफल रहे थे। चूँकि यह सिद्दी अब औरंगज़ेब का नौकर हो गया था, इसलिए जयसिंह ने शिवाजी को यह आशा दिलायी कि यदि वे इस सम्बन्ध में सीधे औरंगज़ेब से बात करें तो बादशाह उन्हें वह क़िला दिलवा देगा। यह भी संभव है कि मुगल साम्राज्य की राजधानी, दरबार और

दरबार के लोग, उनका शासन-प्रबन्ध, आपसी मनमुटाव एवं संघर्ष आदि की आंखोंदेखी जानकारी प्राप्त करने की इच्छा से शिवाजी ने उधर जाना स्वीकार किया हो।

जो हो, शिवाजी ने जयसिंह के आग्रह-वश आगरा जाना स्वीकार किया और साथ ही उससे अपनी सुरक्षा का आश्वासन भी प्राप्त कर लिया। उसने भगवान् एकलिंग जी की शपथ लेकर यह आश्वासन दिया कि—"आपका बाल भी मुगलों द्वारा बाँका नहीं होगा। आपके प्राणों के लिए मैं और मेरा पुत्र रामसिंह ज़ामिन हैं। हम अपना सब कुछ निछावर करके भी आपकी रक्षा करेंगे।"

औरंगज़ेब ने भी अपने पत्र में शिवाजी को उनकी सुरक्षा का आश्वासन दिया था, परन्तु उसकी बात पर शिवाजी को विश्वास नहीं था। वे जयसिंह के वचन का भरोसा करके ही आगरा जाने के लिये प्रस्तुत हुए थे।

जब आगरा जाने का निश्चय हुआ तब अपनी अनुपस्थिति में राज्य के शासन का जो प्रबन्ध शिवाजी ने किया उससे उनकी शासन-संगठन-कुशलता का अच्छा परिचय मिलता है। अपनी अनुपस्थिति में राज्य का सारा कारोबार देखने का उत्तरदायित्व उन्होंने अपनी माँ जीजाबाई को सौंपकर एक तरह से उन्हें राज्य का अभिभावक ही बना दिया। मोरोपंत पिंगले, निळो सोनदेव मजमूदार और नेताजी पालकर के स्थान में नियुक्त सेनापति प्रतापराव गुज्जर, जलसेना के सेनाध्यक्ष दर्या सारंग, दौलतखाँ, मायनाक भंडारी आदि अपने विश्वसनीय सहयोगियों पर उन्होंने विभिन्न कामों की जिम्मेदारियां सौंपीं, जिसके फलस्वरूप उन्हें बार-बार शिवाजी की आज्ञा लेने की आवश्यकता नहीं रही।

उन्होंने सबसे कह रखा था कि किसी दुर्घटना, खबर या अफ़वाह से वे विचलित न हों। उन्होंने लोगों से भी यह कह रखा था कि यदि दुर्भाग्य से उनके साथ कोई दुर्घटना हो भी जाय, तो भी वे सब मिलकर स्वराज्य के कामों को आगे चलायें, शत्रु के आगे कभी न झुकें।

इस प्रकार राज्य का उचित प्रबन्ध करके वे अपने नौ वर्ष के पुत्र संभाजी, जोकि पुरन्धर की सन्धि के अनुसार मुगलों का पांच-हज़ारी मनसबदार बन गया था, और गुप्तचरकला निपुण हिरोजी फ़र्ज़न्द, उसके साथी मदारी मेहतर (मुस्लिम), निराजी रावजी, कवीन्द्र परमानन्द (कवि), त्र्यंबक सोनदेव डबीर आदि चुने हुए साथियों समेत ५ मार्च सन् १६६६ को उत्तरी भारत जाने के लिए निकले। उनके साथ केवल १०० पैदल और २५० अश्वारोही सैनिक थे। आवश्यकता पड़ने पर उपयोग में लाने के लिए काफ़ी धन भी उन्होंने साथ ले लिया था। आगे चलकर इस धन का उन्हें बहुत उपयोग मिला। मिर्जा राजा जयसिंह ने अपने ख़ास सरदार तेजसिंह कछवाहा को उनके साथ कर दिया। उन्होंने अपने पुत्र कुंवर रामसिंह को भी लिख दिया कि—"जब तक शिवाजी आगरा में रहेंगे, उनके प्राणों की रक्षा का भार तुम पर रहेगा। मैंने उन्हें वचन दिया है कि उनका बाल भी बाँका नहीं होगा। यह मत भूलना कि तुम और हम उनके प्राणों के लिए ज़ामिन हैं।"

शिवाजी के मार्ग-व्यय के लिए औरंगज़ेब ने भी शाही ख़ज़ाने से एक लाख रुपया दिलवाया और रास्ते भर ग़ाज़ीबेग नामक अपना एक विशेष अधिकारी उनके साथ रखा। उसने स्थान-स्थान पर स्थित अपने अधिकारियों को आज्ञाएं दी

थीं कि वे शिवाजी का प्रबन्ध वैसा ही रखें जैसा कि शाहज़ादों का रखा जाता है। इसलिए शिवाजी की यह यात्रा बड़ी सुखमय रही। मार्ग में ही उन्हें औरंगज़ेब का एक पत्र मिला जिसमें उसने लिखा था कि—"हम आपसे बहुत संतुष्ट हैं। आप निःशंक होकर यहां पधारें। भेंट होने पर आपका सम्मान किया जायगा और शाही मेहरबानी के साथ आपको दक्षिण के लिए रुख़सत किया जायगा।" इस पत्र के साथ औरंगज़ेब ने उन्हें एक खिलअत भी भेजी थी। इससे शिवाजी के मन में कुछ आशा उत्पन्न हुई कि औरंगज़ेब उनके साथ सज्जनता से बर्ताव करेगा।

१२ मई के दिन चान्द्र तिथि गणना के अनुसार औरंगज़ेब की ५०वीं वर्षगाँठ का उत्सव पड़ता था। अतः उसी दिन शिवाजी के शाही दरबार में उपस्थित होने का निश्चय हुआ था। इसी वर्ष केवल चार मास पूर्व औरंगज़ेब का कैदी पिता शाहजहाँ जीवन की कैद से मुक्त हुआ था। औरंगज़ेब के लिए पिता का देहान्त आनन्द की घटना थी। पिता के जीते जी वह आगरा नहीं गया था। अब उसने उसी आगरा में अपनी वर्षगाँठ का उत्सव बड़े ठाट-बाठ से मनाने का आयोजन किया।

पूर्व निश्चय के अनुसार ११ मई १६६६ को शिवाजी आगरा नगर से केवल एक ही मंज़िल की दूरी पर पहुँच गये। राजधानी के पास पहुँचते ही शिवाजी को अनुभव होने लगा कि उन्होंने ठूंठे पेड़ से फल-फूलों की आशा रखी थी। औरंगज़ेब जैसे ज़हरीले सांप से अमृत की अपेक्षा की थी। उन्होंने देखा कि उनके आगमन का किसी को ध्यान या चिंता थी ही नहीं। उनके स्वागत की कुछ भी तैयारी नहीं थी। जब रामसिंह को शिवाजी के आगमन की सूचना मिली तो उसने

एक बिलकुल ही साधारण आदमी को उनकी अगवानी के लिए भेजा। उसका नाम था गिरधरलाल। वह रामसिंह का मुंशी था। इससे और अधिक अपमान भला क्या हो सकता था?

शिवाजी का दूसरा अपमान तब हुआ जब उन्हें किसी अवाँछनीय अतिथि की तरह मुलुकचन्द सराय में ठहराया गया। अन्य सरदारों के रहने का प्रबन्ध आलीशान कोठियों या शाही शामियानों में किया गया था। शिवाजी ने वह रात राजधानी से बाहर उस सराय में ही बितायी।

शिवाजी का तीसरा अपमान तब हुआ जब दूसरे दिन उनके स्वागत के लिए बादशाह का कोई प्रतिनिधि नहीं आया। उनके स्वागत की जिम्मेदारी ढाई-हज़ारी मनसबदार कुँवर रामसिंह और डेढ़-हज़ारी मनसबदार मुखलिसखाँ को सौंपी गयी थी। परन्तु उसी दिन औरंगज़ेब के शाही महल के पहरे का काम भी रामसिंह को सौंपा गया था। उसने फिर अपने मुंशी गिरधर लाल को भेजा और अपने काम से अवकाश पाने के बाद ही वह मुखलिसखाँ के साथ शिवाजी की अगवानी के लिए निकला। इस समय तक दरबार का काम शुरु हो चुका था। इधर शिवाजी अपमान का कड़वा घूँट पीकर गिरधरलाल के साथ चल पड़े थे। उनका मार्ग निश्चित नहीं था, इसलिए रामसिंह से उनकी भेंट न हो सकी। वे शिवाजी को ढूँढते ही रहे। आखिर किसी प्रकार उनकी भेंट हुई और उनके साथ शिवाजी जेष्ठ की कड़ी धूप में ठीक दोपहर के समय दरबार में पहुँचे। पर तब तक दीवानेआम का दरबार समाप्त हो चुका था और औरंगज़ेब दीवाने-खास में चला गया था।

जब बादशाह को शिवाजी के आने की खबर दी गयी तो उसने उन्हें दीवाने-खास में बुलवाया। बख्शी असदखाँ के साथ शिवाजी, संभाजी, रामसिंह और मुखलिसखाँ अन्दर गये। वहां पर उनका सबसे बड़ा अपमान हुआ जिसे वे किसी तरह सहन नहीं कर सके।

अन्दर पहुँच कर शिवाजी ने बादशाह को एक हज़ार सोने की मोहरें नजर कीं और न्यौछावर के लिए ५ हज़ार रुपये तथा भेंट के दो हज़ार रुपये रखकर बादशाह को तीन बार सलाम किया। उनके साथ राजपुत्र संभाजी भी थे। उनकी ओर से भी शिवाजी ने औरंगज़ेब को पांच सौ स्वर्ण मुद्राएँ, दो हज़ार का नज़राना और न्यौछावर के ५ हज़ार रुपये भेंट किये। इसके बाद बादशाह के साथ शिवाजी का परिचय कराया गया, परन्तु उनके स्वागत में अथवा केवल शिष्टाचार के रूप से भी औरंगज़ेब ने एक शब्द मुँह से नहीं निकाला। उसके बाद शिवाजी और संभाजी को तख्त के सामने से ले जाकर पांच-हज़ारी मनसबदारों की पंक्ति में खड़ा किया गया। दरबार का काम चलने लगा।

अपने को पांच-हज़ारी मनसबदारों के बीच पाकर शिवाजी का खून खौलने लगा। फिर भी वे चुप रहे। इतने में सालगिरह के उत्सव के पान सब उमरावों को दिये गये; शिवाजी को भी पान मिला। उसके बाद जलसे की खिलअतें और सिरोपाव बंटने लगे। वे केवल शाहज़ादों, वज़ीर जाफरखाँ और महाराजा जसवन्तसिंह को दिये गये। शिवाजी को खिलअत नहीं मिली। जब उन्होंने देखा कि जिस जसवन्तसिंह को उनकी सेना ने कई बार बुरी तरह पराजित किया था, उसी को उनसे ऊँचा स्थान देकर औरंगज़ेब ने सब के सामने

उन्हें अपमानित किया है, तब वे अपने मन का नियंत्रण खो बैठे। वे गुस्से से लाल हो उठे। कनखियों से शिवाजी की ओर देखने वाले चालाक औरंगज़ेब की दृष्टि से यह छिपा न रहा। उसने रामसिंह को बुलाकर कहा, "शिवाजी से पूछो, उसकी तबियत कैसी है? उसकी त्योरियां क्यों चढ़ गयी हैं?" जब रामसिंह शिवाजी के पास जाकर पूछने लगा तो शिवाजी गरज कर बोले, "तुमने देखा है, तुम्हारे बाप ने देखा है और तुम्हारे बादशाह ने भी देखा है कि मैं किस किस्म का आदमी हूँ। बताओ, क्या मैं ऐसा व्यक्ति हूँ जिसे जान-बूझ कर इस तरह दूर कोने में खड़ा रखा जाय? अगर खड़ा ही रखना था तो उचित स्थान पर खड़ा करते। मेरा नौ बरस का लड़का भी पांच-हज़ारी मनसबदार है, मेरा नौकर नेताजी पालकर भी पांच-हज़ारी मनसबदार है और मैं इतना बड़ा काम करके इतनी दूर आया हूँ, वह क्या केवल इतने निचले दर्जे का मनसबदार बनने के लिए? लानत है ऐसी मनसब पर! मुझे यह मनसब नहीं चाहिए।"

इतना कहने के पश्चात् वहां से एकाएक मुड़कर बादशाह की तरफ पीठ किये ही शिवाजी चल पड़े। जिस औरंगज़ेब के साथ उन्हें आजीवन जूझना पड़ा, उससे उनकी यह प्रथम एवं अन्तिम भेंट थी। इस भेंट ने जो आग सुलगायी, वह तब तक नहीं बुझी, जब तक उन दोंनों की प्राणज्योतियां नहीं बुझ गयीं।

रामसिंह ने शिवाजी का हाथ पकड़ कर उन्हें रोकना चाहा, पर वे उसका हाथ झटक कर एक ओर बैठ गये। उनके पीछे-पीछे रामसिंह भी गया और उन्हें समझाने की कोशिश करने लगा, पर शिवाजी ने एक न सुनी। वे तिलमिला

कर बोल उठे, "ऐसा लगता है कि आज मेरी मौत आयी है। या तो तुम मुझे मार डालो या मैं खुद आत्मघात कर लूँगा। तुम चाहो तो मेरा सिर काटकर ले जाओ, पर अब मैं बादशाह की सेवा में नहीं जाऊँगा !"

अन्ततः, हारकर रामसिंह बादशाह के पास गया और उसने सारा हाल बादशाह को कह सुनाया। उसने यह भी कहा कि "दक्खिन के मराठे शाही दरबार के नियमों को नहीं जानते, अतः आप उन्हें क्षमा करें।"

बादशाह ने मुल्तफ़ितखाँ, आकिलखाँ और मुखलिसखाँ को हुक्म दिया कि "तुम जाकर शिवाजी को खिलअत दो और उसे समझा-बुझाकर सन्तुष्ट करके यहां ले आओ !"

जब वे तीनों सरदार शिवाजी के पास जाकर उन्हें समझाने लगे तो शिवाजी कड़क कर बोले, "अब मैं सिरोपाव नहीं पहनूंगा। बादशाह ने मुझे जान-बूझकर जसवन्तसिंह से नीचे खड़ा किया। मुझ से यह अपमान सहन नहीं हो सकता। मुझे बादशाह के पद की परवाह नहीं है। मैं किसी का नौकर नहीं बनूंगा। तुम चाहो तो मुझे कत्ल कर दो, या कैद में डालो, पर अब मैं खिलअत नहीं पहनूँगा !"

इस प्रकार उमरावों को भी असफलता मिलने पर बादशाह ने रामसिंह को हुक्म दिया, "कुँअर ! अभी तो तुम उसे अपने साथ डेरे पर ले जाओ और शान्त करो !"

अतः रामसिंह शिवाजी को लेकर अपने डेरे पर गया और उन्हें उसने बहुत-कुछ समझाया, फिर भी उन्होंने एक न मानी। तब एकाध घड़ी अपने पास रखकर रामसिंह ने उन्हें उनके डेरे पर भेज दिया।

बादशाह के दरबार में कितने ही उमराव ऐसे थे जो शिवाजी से बहुत जलते थे। उन्होंने बादशाह से निवेदन किया कि "शिवाजी ने बेअदबी की है फिर भी हुज़ूर उसे क्यों दरगुज़र करते हैं ?" सैयद मुर्तजाखाँ ने कहा, "वह तो हैवान है। उसने सिरोपाव आज नहीं पहना तो कल जरूर पहनेगा। केवल मिर्ज़ा राजा (जयसिंह) का ख्याल है, वरना इसकी कोई फिक्र ही नहीं थी।"

दूसरे दिन शिवाजी दरबार में नहीं गये। जब बादशाह ने पुछवाया तो रामसिंह ने कहा—"शिवाजी को बुखार चढ़ आया है।" औरंगज़ेब समझ गया कि बुखार शारीरिक नहीं, बल्कि राजनैतिक है। सायंकालीन दरबार में भी शिवाजी नहीं गये; उन्होंने अपने बेटे संभाजी को रामसिंह के साथ भेज दिया। वहां बादशाह ने संभाजी को ख़िलअत, रत्न जटित कटार और एक मोतियों का हार भेंट किया।

दो तीन दिन तक सबको आशा थी कि शिवाजी शान्त होकर फिर दरबार में आयेंगे, अपनी उद्दण्डता के लिये क्षमा मांगेंगे और ख़िलअत पहनकर देश लौट जाने की आज्ञा मांगेंगे। परन्तु शिवाजी ने फिर दरबार में जाने से इन्कार ही कर दिया।

औरंगज़ेब के शिवाजी विरोधी वजीरों ने प्रार्थना की—"शिवाजी तो केवल एक छोटा भूमिया, एक गँवार आदमी है। उसने खुले दरबार में हुज़ूर के सामने इतनी उद्दण्डता की है जैसी इससे पहले किसी ने नहीं की थी। उसे हुज़ूर क्यों सहन करते हैं ?"

अन्त में बादशाह को भी यही ठीक जान पड़ा कि या तो शिवाजी को मरवा डाला जाय या फिर आजीवन बन्दी बना

दिया जाय। परन्तु इस विषय में कोई भी निर्णय लेने से पहले मिर्ज़ा राजा जयसिंह से सम्मति लेना बादशाह को आवश्यक प्रतीत हुआ। अतः उसने जयसिंह को लिखवा कर यह पुछवाया कि आगरा भेजते समय उसने शिवाजी को क्या आश्वासन दिया था ?

उस समय जयसिंह दक्षिण में था। उसका उत्तर आने में पर्याप्त समय लगेगा, यह विचार कर औरंगज़ेब ने आदेश दिया कि तब तक के लिए शिवाजी को आगरा क़िले के क़िलेदार अन्दाज़खाँ को सौंप दिया जाय। अंदाज़खाँ बड़ा ही क्रूर व्यक्ति था। लोगों को संदेह हुआ कि किसी बहाने शिवाजी की हत्या कर डालने के लिए ही उन्हें उसके अधीन किया जा रहा है। जब रामसिंह को इसकी खबर लगी तो उसका खून खौल उठा। जिसके प्राणों के लिए वह स्वयं और उसके पिता ज़ामिन थे, उसे अपने जीते जी किसी के हाथों कपट से मरते देखना उसके लिए असहनीय था। मुगलों के प्रधान बख़्शी (तनख़्वाह बाँटने वाला) मुहम्मद अमीनखाँ के पास जाकर उसने कहा—"मुझे पता लगा है कि जहाँपनाह अन्दाजखाँ के हाथों शिवाजी को कत्ल करवाने पर तुले हुए हैं, मगर आप जानते हैं कि शिवाजी मेरे पिता जी के वचन पर आगरा आए हैं। मैं उनकी जान का ज़िम्मेदार हूँ। हम दोनों ने उन्हें वचन दिया है कि यहां पर उनका बाल भी बांका नहीं होगा। इसलिए आप हमारी ओर से बादशाह सलामत से यह निवेदन कीजिए कि वे पहले मुझे मार डालें, और मेरे मरने के बाद वे शिवाजी के साथ जो चाहें करें।"

अमीनखाँ को भी रामसिंह की बात उचित प्रतीत हुई। वह तुरन्त औरंगजेब के पास गया और उसको सारा हाल

कह सुनाया। उसने यह भी कहा कि अगर शिवाजी को धोखे से मारा जायगा तो सारी राजपूत जाति क्रोध से पागल हो उठेगी। इस पर औरंगज़ेब ने अपना विचार बदलकर शिवाजी को रामसिंह के ही सुपुर्द कर दिया। उसने शायद यह भी सोचा कि यदि शिवाजी को अन्दाज़खाँ के कब्ज़े में दिया जाय तो उसकी ज़िम्मेदारी रामसिंह पर नहीं रहेगी और तब वह शिवाजी को भाग जाने में सहायता करेगा। इसलिये उसने सोचा कि शिवाजी की ज़िम्मेदारी रामसिंह पर ही डाली जाय पर साथ ही उस सम्बन्ध में उससे मुचलका भी लिखा लिया जाय। उसके लिए रामसिंह खुशी से तैयार हो गया। उसने मुचलका लिखकर बादशाह की सेवा में उपस्थित कर दिया।

पर इतने से ही औरंगज़ेब को सन्तोष नहीं हुआ। उसने रामसिंह को आदेश दिया कि वह शिवाजी को लेकर काबुल की लड़ाई पर चला जाय। इसके लिए रामसिंह प्रसन्नता से तैयार हो गया। पर जब उसे मालूम हुआ कि उनके साथ अन्दाज़खाँ भी काबुल जायगा तो उसका दिल कांप उठा। अन्दाज़खाँ के साथ चलने का मतलब वह अच्छी तरह जानता था। काबुल की लड़ाई में अन्दाज़खाँ से शिवाजी की हत्या करवा कर लोगों पर यह प्रकट करना औरंगज़ेब के लिए बहुत आसान था कि, "शिवाजी काबुल की लड़ाई में शत्रुओं द्वारा मारा गया।" अतः रामसिंह ने फिर मीर बख्शी मुहम्मद अमीनखाँ की शरण ली और उस आदेश को बादशाह से स्थगित करवाया।

इस बीच शिवाजी ने औरंगज़ेब की सेवा में इस प्रकार की अर्जियां भेजनी शुरु कीं कि "यदि बादशाह मुझे मेरे

सारे किले वापस कर दें तो मैं उन्हें दो करोड़ रुपये देने को तैयार हूँ। मैं बादशाह का नौकर ही रहूँगा। वे जहां भेजेंगे, चला जाऊँगा। इस समय वे मुझे अपने घर लौटने की आज्ञा दे दें। मेरा बेटा यहीं ज़मानत के तौर पर रहेगा। मैं बादशाह की ओर से बीजापुर के विरुद्ध लड़ूंगा और समय पड़ने पर अपने प्राण भी समर्पित करूँगा।"

परन्तु इन अर्जियों का परिणाम उलटा ही निकला। औरंगज़ेब को संदेह हुआ कि शिवाजी किसी बहाने भाग जाना चाहता है। अतः उसने शहर कोतवाल सिद्दी फ़ौलादखाँ को हुक्म दिया कि वह शिवाजी के डेरे के चारों ओर तोपें रखवा कर फौज का कड़ा पहरा बैठा दे। शिवाजी को नज़रबन्द कर दिया गया। डेरे के अन्दर भी आम्बेरी सेना के तीन-चार अफ़सरों और कछवाही (राजपूत) फ़ौज़ों का पहरा लगा दिया गया। इस प्रकार हिन्दुओं का स्वतंत्र राज्य स्थापित करने का सपना देखने वाला वह मराठा राजा सचमुच कुटिल औरंगज़ेब का कैदी हो गया और २९ मई सन् १६६६ को उसका घर से निकलना भी बन्द हो गया।

इस अवसर पर यदि औरंगज़ेब ने शिवाजी से मित्रता कर ली होती तो भविष्य में उसको मराठों के साथ लड़ने में जो शक्ति लगानी पड़ी, वह शायद न लगानी पड़ती। दो मित्र-राज्यों की तरह वे आराम से रहते। अपने इस विश्वासघाती, कपटी एवं कृतघ्न स्वभाव के कारण उसने अपने ही हाथों मुगल साम्राज्य के विनाश की नींव डाली थी। शिवाजी के साथ की गयी इस धूर्तता को मराठे भुला नहीं सके। जब तक लालकिले में स्थित मुगलों के सिंहासन को तरुण पेशवा सदाशिवराव ने चकनाचूर नहीं कर डाला, तब तक शिवाजी

के साथ किये गये औरंगज़ेब के इस अन्याय को मराठे नहीं भूल सके। फिर जब शिवाजी की मृत्यु के बाद औरंगज़ेब दक्षिण गया तो इस अन्याय के प्रति मराठों के मन में जमी घृणा ने ही औरंगज़ेब के विरुद्ध उनको उभाड़ा और उसे तब तक चैन नहीं लेने दी, जब तक कि औरंगज़ेब औरंगाबाद में दफ़ना नहीं दिया गया।

शिवाजी को कैद करने के बाद औरंगज़ेब ने सोचा कि शिवाजी की अनुपस्थिति में वह स्वयं दक्षिण जाकर शिवाजी का राज्य जीत ले। पर जयसिंह ने उसे लिखा कि शिवाजी को कैद में डालकर दक्षिण आने में बड़ा भय है। अगर मराठों को अपने राजा की सुरक्षा के विषय में तनिक भी शंका हो गयी तो वे आदिलशाह और गोलकुण्डा के कुतुबशाह के साथ मिलकर मुगलों को हैरान कर देंगे। इतना ही नहीं, बल्कि अब तक मुगलों ने जो-कुछ प्राप्त किया है, उसे भी वे छीन लेंगे, क्योंकि शिवाजी ने उत्तर भारत जाते समय अपने राज्य का जो प्रबन्ध किया है वह इतना उत्कृष्ट है कि शिवाजी के बिना भी उनका राज्य अच्छी तरह चल रहा है। जयसिंह ने तो यहां तक लिखा कि शिवाजी के साथ मित्रता करके उसे सुरक्षित दक्षिण भेजने में ही बुद्धिमत्ता है। पर औरंगज़ेब ने यह उचित सलाह नहीं मानी। वह तो किसी तरह शिवाजी का नाश करने पर उतारू था। जब जयसिंह को इसका पता चला तो उसने अपनी बात पर ज्यादा ज़ोर नहीं दिया। उसने इसी में सन्तोष माना कि उसकी इच्छा के विरुद्ध औरंगज़ेब शिवाजी की हत्या नहीं करेगा। अतः शिवाजी को कैद में रखने के विषय में वह बादशाह से सहमत हो गया। मगर वह अपने बेटे रामसिंह को लगातार यह लिखता रहा कि

"शिवाजी के प्राणों की रक्षा के लिए हम दोनों उत्तरदायी हैं। यह राजपूत का वचन है। ध्यान रखो कि, 'प्राण जाई बरु वचन न जाई।' रघुकुल की यह रीति हम राजपूतों की भी रीति है।"

रामसिंह भी अपने कर्त्तव्य को अच्छी तरह जानता था और उसे पूरा करने की भरसक कोशिश कर रहा था।

इस प्रकार शिवाजी की कैद से जो गतिरोध हो गया,उससे उन तीनों को ही बड़ी निराशा एवं ग्लानि हुई। जयसिंह ने सोचा था कि शिवाजी-औरंगज़ेब के मिलन से नई, स्वस्थ एवं सशक्त राजनीति का उदय होगा; जिसमें उसका अपना भी हाथ होगा। औरंगज़ेब यह चाहता था कि शिवाजी को या तो पूरी तरह गुलाम बना लिया जाय या फिर सदा के लिए समाप्त ही कर डाला जाय। शिवाजी चाहते थे कि औरंगज़ेब से कुछ अपने काम निकाले जायँ और मुगल दरबार की आन्तरिक ज़ानकारी प्राप्त की जाय। किन्तु तीनों को असफल होना पड़ा और वे अपने-अपने स्थान पर पछताने लगे।

पंछी उड़ गया

जब शिवाजी ने देखा कि वे सचमुच ही औरंगज़ेब के कैदी बन गए हैं तो वे बहुत पछताए। संभवतः उन्हें यह लगा कि आगरा आ जाने में उन्होंने जैसी भूल की थी वैसी दूसरी भूल उनसे जीवन में कभी नहीं हुई थी। पर अब पछताने से क्या हो सकता था ? अब तो छुटकारे का उपाय करना था, अतः वे उस दृष्टि से सोचने लगे।

सबसे पहले उन्होंने यह प्रयत्न किया कि रामसिंह को उनके अपने उत्तरदायित्व से मुक्त किया जाय, क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि उनके कारण रामसिंह पर कोई आँच आए। अतः उन्होंने यह मांग की कि उन्हें रामसिंह के उत्तरदायित्व से मुक्त कर अलग मकान में रखा जाय। पर बादशाह ने इस मांग को स्वीकार नहीं किया। इसके विपरीत उसने उनकी देखभाल को और अधिक कड़ा करने के लिए नगर के कोतवाल के पहरे के साथ ही रामसिंह का पहरा भी जोड़ दिया।

इसके बाद शिवाजी ने रामसिंह को यह समझाने का प्रयत्न किया कि वह अपना मुचलका वापस ले ले, जो उसने उनके लिए बादशाह को दिया था। पर भोला रामसिंह इस बात को नहीं समझ सका। शायद उसने सोचा हो कि इस तरह मुचलका वापस लेने में कायरपन है। अतः इसमें भी शिवाजी को सफलता नहीं मिली, परन्तु आगे चलकर उन्हें इतना सन्तोष अवश्य रहा कि उन्होंने रामसिंह को बचाने की भरसक चेष्टा की थी।

शिवाजी अपने साथ पर्याप्त सम्पत्ति ले गये थे, उससे उन्होंने राजधानी के उमरावों एवं दरबारियों को बड़ी-बड़ी रिश्वतें देकर अपने छुटकारे का प्रयत्न किया; मगर जब तक औरंगज़ेब राजधानी में विद्यमान हो, किसकी हिम्मत थी कि वह बादशाह की इच्छा के विरुद्ध कोई काम करने का विचार तक मन में ला सके।

अन्त में हताश होकर शिवाजी ने औरंगज़ेब की सेवा में १६ जून १६६६ को प्रार्थना-पत्र उपस्थित किया कि "मैं अब इस संसार से ऊब गया हूँ। मुझे किसी तीर्थ में जाने की आज्ञा दी जाय, जहाँ मैं संन्यासी बनकर अपना जीवन बिता सकूं।" इस पर औरंगज़ेब ने कुटिल हँसी हँसकर उत्तर दिया— "बहुत अच्छा! तुम फ़कीर बनकर प्रयाग के किले में रहो, वह बहुत बड़ा पुण्य-तीर्थ है। वहां हमारा सूबेदार बहादुरखाँ तुम को बड़ी सुरक्षा से रखेगा।"

इससे पहले उन्होंने औरंगज़ेब से एक अन्य प्रार्थना यह की थी कि "मेरे साथ जो मराठा सैनिक और सरदार आये हैं उन्हें वापस भेज देने की आज्ञा मुझे दी जाय।" इस प्रार्थना को बादशाह ने तुरन्त स्वीकार कर लिया, क्योंकि उसने

सोचा इससे शिवाजी का अन्त कर देने में और अधिक सुगमता होगी। फिर भी शिवाजी के साथियों को वापस जाने के अनुमति-पत्र तुरन्त नहीं मिले। लगभग डेढ़ महीने के बाद ये अनुमति-पत्र दिये गये। अब शिवाजी के पास केवल दो-चार चुने हुए साथी रह गये। अन्य साथियों की सुरक्षा से निश्चिन्त होकर वे आगे की योजनाएँ बनाने लगे।

उन्होंने अपने छुटकारे का एक अत्यन्त साहसपूर्ण प्रयत्न करने का निश्चय किया। वे अचानक सख्त बीमार हो गये। शहर के वैद्यों-हकीमों को बुलाया गया और तरह-तरह की चिकित्साएँ शुरु हुईं। मगर जहाँ कोई वास्तविक बीमारी थी ही नहीं, वहां वह दूर कैसे होती? जब वैद्यों की कुछ न चली तो दान-धर्म का सहारा लेना आवश्यक हो गया। प्रतिदिन संध्या समय शिवाजी के निवास-स्थान से ब्राह्मणों, संन्यासियों, भिक्षुकों व फ़कीरों के लिए मिठाइयों के टोकरे भेजे जाने लगे। इनमें से कुछ टोकरे राजदरबारियों के पास भी जाते थे। पहरा देने वाले सिपाहियों को भी दिल खोलकर मिठाई खाने की अनुमति थी, अतः वे भी प्रसन्न हो गए। ये टोकरे इतने बड़े होते थे कि प्रत्येक को दो कहारों के कन्धों पर रख कर एक मोटे बाँस के डण्डे से लटका कर ले जाना पड़ता था।

आरम्भ में फ़ौलादखाँ के पहरेदार प्रत्येक टोकरे की पूरी-पूरी देख-भाल और जाँच-पड़ताल करते थे, पर उसमें उन्हें कुछ भी आपत्तिजनक नहीं मिलता था, अतः बाद में उन्होंने अधिक ध्यान देना छोड़ दिया। बिना किसी जाँच-पड़ताल के ही टोकरे आने-जाने लगे। शिवाजी इसी अवसर की टोह में थे। फिर भी उन्होंने शीघ्रता नहीं की। उनकी बीमारी

बढ़ती ही गयी। यहां तक कि लोगों को यह शंका होने लगी कि शिवाजी बचेंगे भी या नहीं। इससे पहरेदार और भी प्रमादी हो गये।

इतने में एक बड़ी बुरी खबर आयी। नगर में नवाब फ़िदाहुसैन नामक सरदार का नया महल बन रहा था। औरंगज़ेब चाहता था कि शिवाजी को उस महल में रखा जाय ताकि उसे फिर जीवित बाहर निकलना असम्भव हो जाय। उस महल में जाने से पहले ही शिवाजी अपने भाग्य को आजमाना चाहते थे। अतः जब उन्हें यह पता चला कि १८ अगस्त को उन्हें फिदाहुसैन के महल में ले जाया जायगा, तो उन्होंने और अधिक समय गँवाना उचित नहीं समझा। उन्होंने अपने साहस के लिए १७ अगस्त १६६६ का दिन निश्चित किया। उस दिन जुम्मा होने के कारण मुस्लिम पहरेदारों में और भी अधिक ढिलाई होने की आशा थी।

उस दिन शाम को सदा की तरह जो मिठाई के टोकरे शिवाजी के निवास-स्थान से बाहर गये उनमें से आगे पीछे के टोकरों में तो सचमुच की मिठाई थी पर बीच के दो टोकरों में एक में स्वयं शिवाजी महाराज थे और दूसरे में थे राजपुत्र संभाजी। कितना भयंकर साहस था! पर उसके अलावा कोई चारा भी तो नहीं था!

पहरेदारों ने सदा की तरह पहले के कुछ टोकरों को खोलकर देखा। उनमें उन्हें मिठाई के सिवाय कुछ भी नहीं मिला, अतः उन्होंने शेष सभी टोकरों को बेरोक-टोक जाने दिया।

जब सारे टोकरे ठीक ढंग से बाहर चले गये तो शिवाजी द्वारा साथ लाया हुआ मुस्लिम छोकरा मदारी मेहतर बाहर

आया और उसने पहरेदारों से कहा कि "आज हमारे महाराज की दशा और भी अधिक चिन्ताजनक है, अतः आप लोग कृपा करके शोर न मचाएँ !" पहरेदारों ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार किया और चुपके से अन्दर झाँका। सचमुच मुँह पर चादर ताने शिवाजी बिस्तर पर लेटे हुए थे। यह दूसरा 'शिवाजी' कौन था ? वह था हिरोजी फ़र्ज़ंद, शिवाजी का प्रधान गुप्तचर। उसकी आकृति शिवाजी से मिलती-जुलती थी। चादर से उसका दाहिना हाथ बाहर निकला हुआ था जिसमें उसने शिवाजी का सोने का कंगन पहन रखा था। शिवाजी का राजमुकुट भी पास ही रखा था। मदारी मेहतर उसके पांव दबा रहा था।

दूसरे दिन दोपहर तक हिरोजी और मदारी का यह नाटक चलता रहा। जब उन्हें विश्वास हो गया कि अब तक शिवाजी दुश्मन के चंगुल से निकल कर बहुत दूर पहुँच चुके होंगे तो उन्होंने बाहर निकल कर पहरेदारों से कहा, "कृपा करके शोर ज़रा कम कीजिये। महाराज का सिरदर्द बहुत बढ़ गया है। हम लोग दवा लाने जाते हैं।" यह कह कर वे भी वहां से खिसक गये—ऐसे खिसके कि फिर उनकी सूरत भी किसी को दिखाई नहीं दी।

एक घण्टा बीत गया, दो घण्टे बीत गये, फिर भी दवा लाने गये नौकर वापस नहीं लौटे। सदा की भान्ति शिवाजी से भेंट करने भी कोई नहीं आया। भीतर से भी कोई आवाज़ नहीं आ रही थी। अतः पहरेदारों को कुछ सन्देह होने लगा। वे दबे पांव अन्दर गये और उन्होंने देखा—

चिड़िया उड़ गयी थी और पिंजरा सूना पड़ा था !

उन पर मानो वज्र टूट पड़ा।

वे भागे-भागे शहर कोतवाल फ़ौलादखाँ के पास पहुँचे और

उसे यह समाचार कह सुनाया ! वह हक्का-बक्का बादशाह के पास दौड़ा गया और उसने इस भयानक घटना की सूचना औरंगज़ेब को दी। उसके कलेजे पर सांप लेट गया। फ़ौलादखाँ ने अपनी निरपराधिता प्रमाणित करने के लिये कहा, "हज़ूर, वह शैतान जादू जानता है। हमारे पहरेदार चौबीसों घण्टे वहां खड़े रहते हैं। उनकी आंखों में धूल झोंकना असम्भव है। वह या तो आसमान में उड़ गया होगा या फिर ज़मीन में धँस गया होगा।" पर औरंगजेब ऐसी बातों पर विश्वास करने लायक भोला तो था नहीं। उसने तुरन्त आगरा नगर को घेर लेने का हुक्म अपनी सेना को दिया और साथ ही तेज़ घुड़सवारों को शिवाजी का पीछा करने के लिए चारों दिशाओं में दौड़ा दिया। परन्तु शिवाजी को भागे अब तक २४ घण्टे से भी अधिक समय बीत चुका था।

बादशाह को संदेह हुआ कि शिवाजी के भागने के इस षड्यंत्र में रामसिंह का भी हाथ अवश्य होगा। रामसिंह के कुछ ब्राह्मण नौकरों को जब फ़ौलादखाँ ने बहुत मारा-पीटा तो उन्होंने मृत्यु के भय से यह स्वीकार किया कि शिवाजी को उसके षड्यंत्र में रामसिंह से पर्याप्त सहायता मिली थी, परन्तु रामसिंह पर लगाया गया यह अपराध प्रमाणित नहीं हो सका। फिर भी बादशाह ने उस राजपूत सरदार का शाही दरबार में आना बन्द कर दिया और उसका मनसब तथा मासिक वेतन भी घटा दिया। यही नहीं, उसे चार-हज़ारी मनसबदार बनाकर असम भेज दिया, जहां उसका भी शीघ्र ही देहान्त हो गया। मिर्ज़ा राजा जयसिंह को भी सम्भवतः इसी अपराध के दण्डस्वरूप औरंगज़ेब ने बुरहानपुर में २८ अगस्त १६६७ को ज़हर देकर मरवा डाला।

इधर शहर से बाहर एक निर्जन स्थान में जब शिवाजी

और संभाजी के टोकरे पहुँच गये तब उन्हें ढोने वालों को विदा कर दिया गया। फिर शिवाजी और संभाजी उन टोकरों में से बाहर निकले और दोनों ने आगरा से छः मील की दूरी पर स्थित एक गांव का रास्ता लिया, जहां पर उनका विश्वासी न्यायाधीश, नीराजी रावजी घोड़ों सहित उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसके साथ दत्ताजी त्रिबक, राधो मित्र आदि साथी भी थे। सभी घोड़ों पर सवार होकर मथुरा की ओर चले। उनके घोड़े हवा से बातें करने लगे। कुछ ही घण्टों में वे मथुरा पहुँच गये। वहां उन्होंने थके-मांदे बालक संभाजी को कृष्णाजी त्रिमल नामक मराठा ब्राह्मण के सुपुर्द कर दिया और शिवाजी तथा उनके साथी संन्यासियों का वेश धारण करके दक्षिण की ओर बढ़ने लगे।

शिवाजी किस मार्ग से दक्षिण पहुँचे, इस सम्बन्ध में कोई निश्चित जानकारी नहीं मिलती। कुछ इतिहासज्ञों का मत है कि औरंगज़ेब के गुप्तचरों को धोखा देने के लिये शिवाजी सीधे दक्षिण न जाकर काशी, प्रयाग, गोंडवन, गोलकुण्डा होते हुए २० नवम्बर १६६६ को राजगढ़ पहुँचे। परन्तु यह बात प्रमाणित है कि लगभग २० अगस्त को शिवाजी बादशाह के अनुमति पत्र दिखाकर अपने तीन सौ अनुयायियों के साथ नरवर की घाटी में होकर दक्षिण की ओर गये थे। यह नरवर की घाटी आगरा से ११६ मील दूर है। इसका तात्पर्य यह था कि २५ जुलाई को जिन मराठा सैनिकों को पारपत्र मिले थे वे अपने नेता की प्रतीक्षा करते हुए ही धीरे-धीरे दक्षिण जा रहे थे। उनके साथ होकर शिवाजी साधारण रास्ते से ही दक्षिण गये। वे कितनी तेज़ी से गये होंगे इसका अनुमान इस बात से लग सकता है कि केवल तीन-चार दिन

में उन्होंने ११६ मील का मार्ग पूरा किया था।*

इस प्रकार उन्हें जो मानसिक एवं शारीरिक कष्ट उठाने पड़े, उनके कारण उनका स्वास्थ्य गिर गया और वे घर पहुँचते ही बीमार पड़ गये।

शिवाजी जब महाराष्ट्र पहुँचे, तो संभाजी उनके साथ नहीं थे, अतः औरंगज़ेब के गुप्तचरों ने यह समाचार दिल्ली भेजा कि संभाजी मर गया। सम्भव है, स्वयं शिवाजी ने ही यह अफवाह फैलाई हो, ताकि शत्रु के प्रान्त में फंसे हुए संभाजी की ओर किसी का ध्यान न जाए। यह युक्ति पूरी तरह सफल हो गयी और दो महीने बाद अर्थात् २० नवम्बर १६६६ को संभाजी भी अपने अभिभावक कृष्णाजी पंत के साथ राजगढ़ पहुँच गये। कृष्णाजी पंत को पुरस्कार स्वरूप शिवाजी ने "विश्वासराव" की उपाधि एवं एक लाख रुपये प्रदान किये।

यद्यपि, आगरा जाने में अपनी भूल हुई, ऐसा ही शिवाजी को आजीवन लगता रहा, फिर भी उससे कुछ लाभ अवश्य हुए। औरंगज़ेब जैसे महापराक्रमी सम्राट् की आंखों में उन्होंने जो धूल झोंकी उसके कारण उनके पराक्रम का बोल-बाला चारों ओर हो गया। अपने वसीयतनामे में उसने लिखा है—"अपने राज्य में क्या चल रहा है इसका पता रखने में एक क्षण के लिए भी लापरवाही बरती जाय तो उसके कारण जीवन भर पछताना पड़ता है। उस कम्बख़त शिवा की निगरानी में जो थोड़ी-सी लापरवाही हुई उसकी वजह से मुझे अपने जीवन के अन्त तक युद्ध की ये यन्त्रणाएं भुगतनी पड़ रही हैं।"

---

*इसी वेग से वे आगे बढ़ते गए और लगभग २५ दिन में सारा रास्ता पार करके १२ सितम्बर १६६६ को सकुशल फिर अपने घर राजगढ़ पहुँच गए। इस छः मास की लम्बी अवधि में से लगभग ३ मास उन्होंने औरंगज़ेब की कैद में काटे।

पुनश्च हरिः ॐ

सब की यही अपेक्षा थी कि मुगलों की कैद से छूटकर आते ही शिवाजी मुगलों और बीजापुर वालों के प्रान्त में छापे मारेंगे, लूटपाट करेंगे और शत्रु के प्रदेश को नष्ट-भ्रष्ट करेंगे। मुगलों के सरदार जयसिंह ने अपने इलाके का प्रबन्ध करना शुरु कर दिया। उसी समय महादजी निंबालकर ने बीजापुरी सेना की सहायता से मुगलों के एक सेनापति के साथ युद्ध करके उसे मार डाला और जयसिंह के किये गये प्रबन्ध को अस्त-व्यस्त कर दिया। इससे सभी भयभीत हो गये; परन्तु सब की आशाओं के विपरीत शिवाजी ने कोई नई चढ़ाई न करने का निर्णय किया। वे अपने प्रदेश का प्रबन्ध करने में और अपनी सेना को विश्राम देने में ही कुछ समय बिताना चाहते थे, अतः उन्होंने प्रकटतया यह कहना शुरु किया कि "मैं तो बादशाह की शरण हूँ। मैं उनका नौकर ही हूँ।"

शिवाजी की यह नीति औरंगज़ेब के लिए भी सुविधा-जनक थी। उसी समय ईरान के शाह अब्बास एवं सरहद के

यूसुफ़ज़ई नामक विद्रोहियों ने औरंगज़ेब के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया, अतः दक्षिण की ओर ध्यान देना उसके लिए संभव नहीं रहा। इसलिए शिवाजी के साथ सन्धि करने में ही उसने भी बुद्धिमत्ता समझी। शिवाजी के आगरा से निकल भागने के बाद उसने शिवाजी के राजदूत रघुनाथपंत कोरडे तथा त्र्यम्बकपंत डबीर को कैद कर रखा था और उन्हें बहुत यंत्रणाएँ दी थीं। पर उससे कुछ लाभ नहीं हुआ। इसलिए लगभग साढ़े सात महीने के बाद उसने उन दोनों को छोड़ दिया और इस प्रकार सन्धि की पृष्ठभूमि तैयार की। उसने रघुनाथपन्त को बुलाकर कहा कि उसने शिवाजी को क्षमा कर दिया है और सन्धि करने को तैयार है। शिवाजी भी सन्धि करने के लिए तैयार हो गये।

इसी बीच औरंगज़ेब ने जयसिंह के स्थान पर शाहज़ादा मुअज़्ज़म को दक्षिण का सूबेदार तथा महाराजा जसवन्तसिंह को सेनापति बनाकर भेज दिया था। वे दोनों शिवाजी के साथ युद्ध करने के विशेष उत्सुक नहीं थे। कुछ दिनों बाद जयसिंह का देहान्त भी हो गया। तब शिवाजी के विरुद्ध युद्ध करने का मुगलों का रहा-सहा उत्साह भी जाता रहा और वे शिवाजी के साथ सन्धि करने के लिए उत्सुक हो उठे। तब शिवाजी ने जसवन्तसिंह को लिखा, "मेरे संरक्षक मिर्ज़ा राजा मर चुके हैं, अतः अब आपका ही भरोसा है। आपकी सिफारिश पर यदि मुझे क्षमा प्रदान कर दी जाय तो मैं अपने पुत्र संभाजी को शाहज़ादे की सेवा में भेज दूँगा। वह शाही मनसबदार बनकर मेरे सैनिकों के साथ आपके आज्ञानुसार शाही सेवा करता रहेगा।"

जसवन्तसिंह और शाहज़ादे मुअज़्ज़म ने इस प्रस्ताव को

सहर्ष स्वीकार कर शिवाजी के लिए औरंगज़ेब से सिफारिश की, जिस पर औरंगज़ेब ने भी अपनी अनुमति दे दी। उसके अनुसार अपने पद को स्वीकार करने के लिए राजपुत्र संभाजी २७ अक्तूबर १६६७ को शाहज़ादे के पास औरंगाबाद आये। २८ ता० को जसवन्तसिंह से और एक सप्ताह बाद शाहज़ादे से उनकी भेंट हुई। विधिवत् मनसबदार बनकर संभाजी औरंगाबाद से राजगढ़ लौट आये। चूँकि वे अल्पवयस्क थे इसलिए उनके प्रतिनिधि के रूप से निराजी रावजी (मनसबदार की जागीर के प्रबन्धक) एवं प्रतावराव गुजर (सेनापति) औरंगाबाद जाकर मुअज़्ज़म की सेवा में उपस्थित हुए। इसी बीच, ९ मार्च १६६८ को औरंगज़ेब ने एक आज्ञापत्र के द्वारा शिवाजी को राजा कहना स्वीकार किया और मराठों द्वारा समर्पित किलों में से चाकण का किला शिवाजी को वापस लौटा दिया। यह सन्धि दो वर्षों तक स्थिर रही। वास्तव में यह नई सन्धि नहीं थी, बल्कि पुरन्धर की सन्धि को ही इसके द्वारा नये रूप में स्वीकृति दी गयी थी।

सन् १६६७ से लेकर १६६९ तक के तीन वर्षों में शिवाजी मुगलों के आश्रित राजा बनकर पूर्ण रूपेण शान्त रहे। बीजापुर के साथ भी उनके सम्बन्ध शान्तिपूर्ण रहे। वास्तव में इन तीन वर्षों में शिवाजी बहुत ही व्यस्त थे। इस काल में उन्होंने बड़ी ही बुद्धिमत्ता के साथ सारा संगठन बनाकर शासन की नींव सुदृढ़ की। मुगल सम्राट् ने जब उन्हें 'राजा' के रूप में स्वीकार कर लिया तो जंजिरा के सिद्दी, बीजापुर के आदिलशाह, गोलकुंडा के कुतुबशाह आदि ने भी उन्हें 'राजा' मान लिया।

भारत के पश्चिमी तट पर जो विदेशी सत्ताएँ अपना जाल फैला रही थीं, उनमें अंगरेज़ और पुर्तगाली प्रमुख थे। अंगरेजों का ध्यान व्यापार की ओर अधिक था। पुर्तगालियों की नीति इसके विपरीत थी। उन्हें अपनी जलसेना के सामर्थ्य पर बड़ा घमंड था। गोमन्तक (गोवा) से वे अपने राज्य एवं धर्म का प्रचार और प्रसार करने की चेष्टा करते थे। उन्होंने सैंकड़ों हिन्दुओं को ईसाई बनाया और अनेकों मन्दिरों के स्थान पर गिरजाघर बनवाये। वहां के वाइसराय ने यह कानून बनाया कि रोमन कैथोलिकों को छोड़कर अन्य सभी धर्मों के लोगों को गोवा से निकाल दिया जाय। जब शिवाजी तक यह समाचार पहुँचा तो वे बड़े क्रुद्ध हुए। उन्होंने गोवा से पुर्तगालियों को मार भगाने का विचार किया। इसी काल में कुडाल के देसाई केशवनायक एवं लखमसावंत ने विद्रोही बनकर पुर्तगालियों के सहारे शिवाजी के प्रदेश में लूट-पाट करना शुरु किया था। शिवाजी के सूबेदार ने इस बात की ओर पुर्तगाली वाइसराय का ध्यान आकर्षित किया, पर वाइसराय ने उसकी किञ्चित् भी चिंता नहीं की।

इससे शिवाजी को अवसर मिल गया। वे नायक-सावंत का पीछा करते हुए पुर्तगालियों के बारदेश नामक प्रदेश में जा घुसे और तीन दिन के अन्दर उन्होंने पुर्तगालियों के सोलह से अधिक गाँव फूँक डाले तथा १३०० लोगों को कैदी बनाकर अपने साथ ले आए। वहाँ के चार पादरियों ने अन्य धर्मियों को मार डालने की सलाह वाइसराय को दी थी। उन चारों को भी पकड़ कर हिन्दू बनने के लिए कहा गया; परन्तु वे तैयार नहीं हुए, इसलिए उन्हें मार डाला

गया। साथ ही उन्होंने लगभग एक करोड़ पचास लाख होन (५ करोड़ रुपये) पुर्तगालियों के प्रदेश से लूटे। यह सब देखकर पुर्तगाली शासकों की आँखें खुल गयीं। उन्होंने २ दिसम्बर १६६७ को शिवाजी के साथ सन्धि कर ली।

इसके एक साल बाद शिवाजी ने गोवा से पुर्तगालियों को मार भगाने की एक दूसरी योजना बनायी। उन्होंने अपने कुछ सैनिकों को चुपके से गोवा भेज दिया। अपनी संख्या एक हज़ार हो जाने के बाद वे अचानक गोवा पर कब्ज़ा कर लें और उसी समय शिवाजी की सेना बाहर से गोवा पर धावा बोले, इस तरह की यह योजना थी। पर दुर्भाग्य से इसका पता पुर्तगालियों को लग गया और उन्होंने शिवाजी के सैनिकों को कैद करके शिवाजी के पास वापस भेज दिया। अगले वर्ष शिवाजी ने फिर संघर्ष करने की चेष्टा की, पर उसमें भी उन्हें सफलता नहीं मिली। उसके बाद जो सन्धि हुई उसमें पुर्तगालियों ने शिवाजी की सत्ता को मुगलों के समकक्ष स्वीकार किया, यही उससे एकमात्र लाभ हुआ।

जंजिरा नामक द्वीप के हब्शी लोग, जो एक तरह से समुद्री डाकू ही थे, आसपास के इलाके को बहुत सताते थे। उन्हें भी ठिकाने से लगाने की शिवाजी ने पूरी कोशिश की। जंजिरा के पास समुद्र के किनारे दंडा और राजपुरी नाम के गाँव थे। वे तथा और सात-आठ किले सिद्दी फ़तहखाँ के कब्ज़े में थे। शिवाजी ने इन किलों को जीत लिया और जलसेना लेकर जंजिरा पर आक्रमण कर दिया। सिद्दी फ़तहखाँ ने अंगरेजों से सहायता मांगी, परन्तु उन्होंने शिवाजी के विरुद्ध सहायता देने से इन्कार कर दिया। सिद्दी के भागे हुए लोगों को बम्बई में आश्रय देने से भी उन्होंने इन्कार कर

दिया। तब सिद्दी ने मुगलों से सहायता मांगी। पर वह भी समय पर नहीं मिली, अतः वह अपना जंजिरा द्वीप शिवाजी के सपुर्द करने को तैयार हो गया। परन्तु उसके सेनापति सिद्दी संबुल, सिद्दी कासिम और सिद्दी खैरियत को यह बात पसन्द नहीं आयी। उन्होंने सिद्दी फ़तहखाँ को कैद कर लिया और सीधे औरंगज़ेब से सहायता की प्रार्थना की। औरंगज़ेब ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर अपने जहाज़ मदद के लिए भेजे। इसलिए जीते हुए प्रदेश से संतोष मानकर शिवाजी लौट गये।

जब कुछ निश्चितता हुई, तब शिवाजी ने अपना ध्यान भूमि एवं किसानों की ओर लगाया। मुगलों तथा अन्य शत्रुओं के आक्रमणों के कारण महाराष्ट्र की जनता एवं उसकी खेती का बड़ा बुरा हाल हो रहा था। अपने-पराये सभी किसानों को लूटते थे, जिससे वे दिन प्रतिदिन कंगाल होते जा रहे थे। शिवाजी ने इस दशा से उन्हें उबारने की पूरी-पूरी चेष्टा की। उन्होंने नये सिरे से ज़मीन की पैमाइश करायी, उसका वर्गीकरण कराया और उसके अनुसार भूमि-कर निश्चित किया। तकावी वसूली आदि के ऐसे नये नियम बनाये, जिनसे किसानों और अधिकारियों दोनों को सुविधा हो। इससे भूमि-कर की प्राप्ति में पर्याप्त वृद्धि हुई और एक तरह से वह नियमबद्ध हो गयी। भूमि का वर्गीकरण एवं कर निश्चित करने के लिए देशमुख, देशपांडे, पटेल और गाँव के प्रतिष्ठित लोगों का एक मण्डल बनाया जाता था, जिससे किसी के साथ अन्याय होने की संभावना नहीं रहती थी। इस नये प्रबन्ध के कारण लोगों में अधिक अन्न उत्पन्न

करने का उत्साह उत्पन्न हुआ और राज्य का खजाना भी भरा-पूरा रहने लगा।

मुगलों की लूट-पाट के कारण लोगों के पास नक़द पैसा नहीं बचा था। इसलिए शिवाजी ने लोगों को यह छूट दी कि वे अपना लगान अनाज के रूप में भी दे सकते हैं। राज्य को भी इससे बहुत लाभ हुआ। जब कहीं अकाल पड़ता तो वही अनाज लोगों को दिया जाता था। साथ ही लुटेरों के लिए नकद रुपया लूटना जितना आसान होता है उतना गल्ला लूटना नहीं होता।

शिवाजी ने सामन्तशाही का विरोध किया और उसे दबाने की चेष्टा की। मुस्लिम शासकों ने अपनी सेवा करने वालों को छोटी-बड़ी ज़मीनें, जागीरें आदि देकर उन्हें सदा के लिए अपना गुलाम बना लिया था। वे छोटे-बड़े सामन्त एक ओर जनता का शोषण करते थे और दूसरी ओर अधिक भूमि या प्रदेश हस्तगत करने के लिए एक दूसरे के साथ लड़ते-झगड़ते भी रहते थे। उन्हें केवल उनकी भूमि तथा जागीर का ही ध्यान रहता था। सारे देश या राज्य का विचार उनके मन में कभी भी नहीं आता था। इसलिए शिवाजी ने जमीन-जागीर के बजाय नकद वेतन देने की प्रथा आरम्भ की, जिससे राजसत्ता के साथ जनता का सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया और उसका शोषण रुक गया। जब लोगों ने देखा कि सरकारी लगान एक बार दे देने के बाद उन्हें कोई सताने नहीं आयेगा, तो अधिक उत्पादन करने के लिए भी उनमें उत्साह उत्पन्न हुआ।

शिवाजी ने अपनी सेना का भी उचित प्रबन्ध किया। उनकी स्थलसेना में अधिकतर पैदल एवं अश्वारोही सैनिक

ही थे। हाथियों की संख्या बहुत कम थी। तोपखाना भी बहुत बड़ा नहीं था। जिस पहाड़ी प्रदेश में उनकी सेना को लड़ना पड़ता था, वहां हाथियों या भारी तोपों से लाभ होने के बजाय हानि ही हो सकती थी। फिर उनका युद्ध-तंत्र छापामार ढंग का होने से उसमें हाथियों एव तोपों का काम भी कम रहता था। हाँ, किलों, थानों, जहाज़ों आदि पर तोपें अवश्य होती थीं।

उनकी पैदल सेना में दस सैनिकों पर एक नाईक, पांच नाईकों पर एक हवलदार, तीन हवलदारों पर एक जुमलादार और दस जुमलादारों पर एक एकहज़ारी रहता था। सेना तथा सेनाधिकारियों को नकद वेतन दिया जाता था। पैदल सेना का सर्वश्रेष्ठ अधिकारी 'सरनौबत' कहलाता था। सब से बड़ी टुकड़ी पांच-हजार सैनिकों की होती थी। स्मरण रहे कि शिवाजी का पहला पैदल-सेनापति नूरखाँ बेग नामक एक मुसलमान था।

अश्वारोही सेना के दो भाग थे। एक बारगीर और दूसरे शिलेदार। शिलेदारों (सिलाह = अस्त्रशस्त्र) के पास उनके अपने घोड़े रहते थे; बारगीरों (बार=बोझ, भार) को सरकार की तरफ से घोड़े मिलते थे। शिलेदारों को घोड़ों के खर्चे के लिए अलग तनख्वाह मिलती थी। पच्चीस घुड़सवारों पर एक हवलदार, पांच हवलदारों पर एक जुमलादार, दस जुमलादारों पर एक सूबेदार और दस सूबेदारों पर एक पाँचहज़ारी होता था। पचीस घोड़ों के लिए एक भिश्ती और एक नालबन्द होता था। अश्वारोही सेना के सेनापति को भी सरनौबत कहा जाता था।

इसी ढंग का संगठन जलसेना का भी था, उसमें तरह-

तरह के जहाज़ थे। समुद्र के किनारे रहने वाली मछुआ, मल्लाह आदि जातियों के युवकों को जलसेना में भर्ती किया जाता था। उनमें मुसलमान भी काफी संख्या में होते थे। शिवाजी के पास कुल मिलाकर लगभग एकसौ साठ छोटे-बड़े जहाज़ थे और समुद्री सैनिकों की संख्या पाँच हज़ार थी। समुद्री सेना के नायकों में दरयासारंग, इब्राहीमखाँ, दौलतखाँ और मायनाक भंडारी प्रमुख थे।

शिवाजी ने अपने किलों की देखभाल भी अच्छी रखी थी। उन्होंने कई नये किले बनवाये और अनेक पुराने किलों की मरम्मत की। किलों की रक्षा के लिए उन्हीं लोगों को नियुक्त किया जाता था जिनके लिए विश्वासपात्र लोग ज़मानत देने को तैयार होते थे। उन में ब्राह्मण, कायस्थ, क्षत्रिय, अस्पृश्य, मुसलमान आदि सभी जातियों के लोग रहते थे।

मुगलों और शिवाजी की सेनाओं में कुछ विशेष बातों में भेद पाया जाता था। मुगल सरदार अपने साथ अपना अन्त:पुर और बाजारू औरतों को भी रखते थे। पर शिवाजी ने यह नियम बनाया था कि सेना में कोई भी व्यक्ति अपने साथ किसी स्त्री को नहीं रख सकता। जो कोई इस नियम का उल्लंघन करता उसकी गर्दन उतार दी जाती थी। यही कारण था कि शिवाजी की छोटी-छोटी सेनाएँ तेजी के साथ जब मुगल सेना पर टूट पड़तीं, तब उनका सामना करना कठिन हो जाता था।

शिवाजी के इस नये राज्य को 'हिन्दवी स्वराज्य' या 'हिन्दु-पद-पातशाही' कहा गया, परन्तु वास्तव में वह केवल हिन्दुओं का राज्य नहीं था। एक तरह से वह धर्मनिरपेक्ष

राज्य ही था, जिसमें सभी धर्मों एवं पंथों को समान अधिकार प्राप्त था। शिवाजी धर्म के विषय में बड़े प्रगतिशील थे। नेताजी पालकर एवं बजाजी निंबालकर जैसे लोगों को, जो किसी कारण से मुसलमान बन गए थे, उन्होंने फिर से शुद्ध करके हिन्दू बना लिया था। पर साथ ही किसी मुसलमान को उसकी इच्छा के विरुद्ध उन्होंने कभी हिन्दू नहीं बनाया।

मुसलमानों को ऊँचे अधिकार देने में भी शिवाजी कभी नहीं हिचकिचाए। उनकी जलसेना के नायकों में कई मुसलमान थे। आगरा से निकल भागने में उनकी मदद करने वाला मदारी मेहतर भी मुसलमान फ़र्राश ही था। अफ़ज़ल-खाँ से मिलने के लिए जाते समय उन्होंने अपने साथ जो चुने हुए वीर लिए थे, उनमें भी एक विश्वासी मुसलमान था।

उन दिनों मुस्लिम शासक हिन्दुओं के मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट कर रहे थे पर उसका बदला लेने की दृष्टि से शिवाजी ने मुसलमानों के प्रार्थना-स्थलों को भ्रष्ट करने का विचार भी मन में नहीं आने दिया। इतना ही नहीं उन्होंने मुसलमानों के पवित्र स्थानों को हिन्दू देवस्थानों की तरह ज़मीनें भी दीं। जब राजगढ़ को उन्होंने राजधानी बनाया तो वहां अपने महाद्वार के सामने मुसलमानों के लिए एक मस्जिद भी बनवायी। लूट-पाट में जब कुरान-शरीफ़ की किताबें मिलतीं तो वे उन्हें उनके मालिकों के पास ससम्मान पहुँचा देते थे। बाबा याकूत जैसे मुस्लिम सन्तों के दर्शनों के लिए भी वे आदरपूर्वक जाते थे। मुल्ला हैदर नामक एक विद्वान् मुसलमान शिवाजी के पास पत्र-लेखक के रूप में रहता था। उसे सन् १६७२ में शिवाजी ने बहादुरखाँ के पास अपना दूत

बनाकर भेजा था। वह शिवाजी के साथ अन्त तक रहा। शिवाजी के देहान्त के बाद संभाजी के साथ उसकी नहीं बनी। तब वह औरंगज़ेब की नौकरी में चला गया था। कुछ वर्षों के उपरान्त वह दिल्ली का प्रधान काज़ी और मुगल साम्राज्य का सर्वश्रेष्ठ न्यायाधीश बना।

मुगलों का दक्षिण का सूबेदार मुअज़्ज़म शिवाजी से मित्रता रखना चाहता था। संभव है, उसने सोचा हो कि आगे चलकर जब अपने पिता औरंगज़ेब के विरुद्ध विद्रोह करके सत्ता प्राप्त करने का समय आयेगा, तो शिवाजी से सहायता मिलेगी। इसलिए उसने औरंगज़ेब से सिफारिश की कि वह शिवाजी को 'राजा' की उपाधि दे दे। उसके कथनानुसार औरंगज़ेब ने यह उपाधि शिवाजी को दे दी। ९ मार्च १६६८ को बादशाह के आज्ञापत्र के साथ मुअज़्ज़म ने शिवाजी को जो पत्र लिखा था, उसमें ये वाक्य थे :—

"राजा शिवाजी ! आपके प्रति मेरे मन में जो सहानुभूति है उसके कारण मैंने आपकी अचल निष्ठा के विषय में जहाँपनाह को लिखा था। उन्होंने आपको 'राजा' की उपाधि से विभूषित करके आपका सिरबुलंद किया है।······आपकी अन्य इच्छाओं के विषय में भी मैंने सम्राट् को लिखा है।·· विश्वास रखें कि आप पर हमारी कृपादृष्टि है।"

मुअज़्ज़म का यह विचार औरंगज़ेब को रुचिकर न था, क्योंकि उसमें उसे खतरा दिखाई देता था। फिर भी कुछ दिन के लिए वह चुपचाप उसके व्यवहार को देखता रहा। परन्तु उसके क्षुद्र मन ने उसे अधिक समय शान्त नहीं रहने

दिया। शिवाजी द्वारा किए गए अपने अपमान का बदला लेने के उपाय वह सोचने लगा।

संभवत: इसी काल में महाकवि भूषण शिवाजी के पराक्रमों से प्रभावित होकर उनके दर्शनों के लिए राजगढ़ पहुँचे थे। जनश्रुति कहती है कि शिवाजी से उनकी भेंट गढ़ के नीचे अचानक ही हो गयी। रात का समय होने से वे दोनों एक-दूसरे को पहचान नहीं पाये। जब शिवाजी को मालूम हुआ कि वे कवि भूषण हैं तो उन्होंने उनसे कहा कि "शिवराज के दरबार में पहुँचने के पूर्व आप हमें भी कोई छन्द सुनाइए।" तब भूषण ने मालोपमा का यह कवित्त सुनाया :—

इन्द्र जिमि जम्भ पर, बाड़व सुअंभ पर,
रावन सदंभ पर, रघुकुल राज है।
पौन वारिवाह पर, संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाह पर, राम द्विजराज है॥

दावा द्रुमदंड पर, चीता मृगझुण्ड पर,
भूषण वितुण्ड पर, जैसे मृगराज है।
तेज तम-अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलिच्छ बंस पर, सेर सिवराज है॥

यह छन्द सुनकर शिवाजी ने भूषण की बड़ी प्रशंसा की और छन्द को फिर सुनना चाहा। भूषण ने उसे फिर कह सुनाया। इसी भांति १८ बार इसी छन्द को पढ़ कर भूषण थक गये और १९वीं बार आगंतुक (शिवाजी) की पुनः प्रार्थना करने पर भी न पढ़ सके। तब शिवाजी ने अपना नाम बतला कर कहा कि "हमने प्रतिज्ञा की थी कि जितनी

बार आप यह छन्द पढ़ेंगे, उतनी लक्ष मुद्राएँ, उतने हाथी और उतने ही ग्राम हम आपको देंगे। पर अधिक मिलना आपके भाग्य में न था।" भूषण ने उतने पर ही सन्तोष करते हुए कहा कि अब मुझे और क्या चाहिए ? इसी समय से भूषण शिवाजी के राजकवि बन गये।

संभव है, इसमें कुछ अतिशयोक्ति हो, पर प्रतीत होता है कि भूषण ने शिवाजी के दर्शन अवश्य किए होंगे। उनके ग्रंथ 'शिवराज भूषण' एवं 'शिवाबावनी' काव्य की दृष्टि से अत्यन्त लोकप्रिय हैं।

फिर से रणाङ्गण में !

लगभग तीन वर्ष शान्ति से बीते। शिवाजी ने इसका लाभ उठाया और अपनी सैनिक सामर्थ्य बढ़ाने के साथ ही प्रजा के सुख की ओर भी ध्यान दिया। यह तो स्पष्ट ही था कि मुगलों के साथ की गयी अपमानजनक सन्धि को सदा के लिए स्वीकार करना उनके लिए असंभव था, क्योंकि उन्हें अपने 'स्वराज्य' का अधिक से अधिक विस्तार करना था। पर वे अपनी ओर से सन्धि को भंग करना नहीं चाहते थे। यद्यपि इस बीच में औरंगज़ेब ने अपनी खीझ उतारने के लिए कई ऐसी अनुचित चेष्टाएं की थीं, जिनके कारण शिवाजी का स्वाभिमानी रक्त खौल उठता था। फिर भी वे चुप रहे।

सब से पहले औरंगज़ेब ने हिन्दुओं पर फिर से जज़िया (कर) लगा दिया। यह एक ऐसा कर था जो मुसलमानी राज्य में अन्य धर्मवालों पर लगाया जाता था। इस कर का मतलब यह था कि हिन्दु सम्मानित प्रजा नहीं, बल्कि वे ऐसे दास हैं जो बादशाह की कृपा से ही राज्य में रह सकते हैं। शिवाजी को इस जज़िया से बड़ी ही चिढ़ थी। इसके साथ ही

औरंगज़ेब ने सूरत के हिन्दू व्यापारियों पर अनेक अतिरिक्त कर लाद दिए। मुस्लिम व्यापारियों को ये कर नहीं देने पड़ते थे और ईसाइयों को आधे देने पड़ते थे। करों के अतिरिक्त हिन्दुओं को बहुत सताया भी जाता था। तब कुछ हिन्दू व्यापारी अंगरेजों आदि के आश्रय में चले गये। पर वहां उन्हें ईसाई बनाने के लिए षड्यंत्र रचे जाने लगे। इसलिए वे सूरत छोड़कर अन्यत्र भागने लगे और इससे सूरत का बहुत कुछ व्यापार ठप्प हो गया। परन्तु औरंगज़ेब को उसकी कहाँ परवाह थी ? उसका अन्याय चलता ही रहा।

संभवत:, इतने से भी औरंगज़ेब के दुष्ट मन को सन्तोष नहीं हुआ। उसने मुगल साम्राज्य के अन्दर के सारे हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त कर डालने का ९ अप्रैल १६६९ को खुला हुक्म निकाला। उसके लिए उसने एक अलग काज़ी की भी नियुक्ति की। उस काज़ी के अधिकार में घुड़सवारों की एक टुकड़ी दी गयी। मूर्त्तियां तोड़ी जाने लगीं, मन्दिरों के स्थान पर मस्जिदें खड़ी होने लगीं, हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाया जाने लगा। इस काम के लिए उसने एक नया कार्यालय ही बना दिया। प्रति मास कितने मन्दिर गिराए, कितनी मूर्त्तियां तोड़ीं, कितने लोगों को मुसलमान बनाया आदि बातों की सविस्तर जानकारी सम्राट् की सेवा में उपस्थित करने की आज्ञा उन्हें दी गयी।

आँखों के सामने इतना होने पर भी शिवाजी हलाहल-पिये शिव की तरह सब कुछ चुपचाप सहते गये। पर जब अगस्त १६६९ में औरंगज़ेब ने काशी का पवित्र विश्वनाथ मन्दिर तोड़कर उसकी जगह मस्जिद खड़ी की तो उनकी सहनशीलता का अन्त हो आया। अब अधिक सहन करना

उनके लिए असंभव हो गया। उन्होंने औरंगज़ेब की इन कुचेष्टाओं के लिए उसका धिक्कार करने वाला एक पत्र उसे लिखा। पर वे अच्छी तरह जानते थे कि 'लातों के भूत बातों से नहीं मानते।' इसलिए औरंगज़ेब के विरुद्ध युद्ध शुरु करने की तैयारी में वे लग गये—उसको यह बता देने के लिए कि इस देश में हिन्दू अनाथ नहीं हैं, उनका भी कोई रक्षक मौजूद है।

इतने में स्वयं औरंगज़ेब ने सन्धि भंग कर दी। इसमें भी उसने धोखे से ही काम लिया। यह सही है कि जिसे एक बार छल करने की आदत पड़ गयी हो वह हमेशा उसी मार्ग से जाने की कोशिश करता है। औरंगज़ेब शिवाजी को आगरा में कपट से मार डालना चाहता था, पर शिवाजी उसके लिए सवासेर प्रमाणित हुए। अब उसने सोचा कि फिर एक बार शिवाजी को अपने जाल में फंसाया जाय। शिवाजी और मुअज़्ज़म की मित्रता में भी वह किसी तरह से बाधा डालना चाहता था। इसलिए उसने मुअज़्ज़म के हाथों ही शिवाजी, या उनके पुत्र संभाजी या फिर उनके दो सेनापतियों, प्रतापराव गुजर और नीराजी रावजी को धोखे से पकड़वाने का षड्यन्त्र रचा। शिवाजी-संभाजी तो बहुत दूर थे। वे अब सुगमता से पकड़ में नहीं आ सकते थे। पर उनके सेना-पतियों को भी कपट से पकड़ना मुअज़्ज़म को अच्छा नहीं लगा। इस सम्बन्ध में औरंगज़ेब का हुक्म मिलने से पहले ही मुअज़्ज़म को अपने दूत द्वारा यह खबर मिल चुकी थी। अतः मुअज़्ज़म ने प्रतापराव गुजर एवं नीराजी रावजी को बुलाकर उन्हें चुपचाप निकल जाने को कहा। उसके अनुसार वे दोनों रात ही रात में अपने ढाई हजार अश्वारोही सैनिकों के साथ

औरंगाबाद से राजगढ़ की ओर चल दिये। उन्होंने रावजी सोमनाथ को भी इसकी खबर कर दी, जो विदर्भ में संभाजी की जागीर का प्रबन्ध देखते थे। उस संदेश के अनुसार रावजी सोमनाथ अपने ढाई हजार सैनिकों को साथ लेकर राजगढ़ लौटे। पर वे खाली हाथ नहीं आए। आते-आते उन्होंने मुगलों के इलाके से पर्याप्त धन भी लूट लिया, भविष्य की लड़ाई के लिए जिसकी नितान्त आवश्यकता थी। इस प्रकार औरंगज़ेब का यह दाँव भी निष्फल हो गया।

इस परिस्थिति में औरंगज़ेब की कंजूसी ने आग में तेल का काम किया। उसने शिवाजी को जब आगरा बुलाया था, तब उनके मार्गव्यय के लिए शाही खजाने से एक लाख रुपये दिलवाए थे। अब उसने वह रुपया उनसे वापस लेना चाहा। शिवाजी से सीधी तरह उसके प्राप्त होने की संभावना तो थी नहीं, शायद उसकी मांग करने में उसे लज्जा भी हो, अतः उसने संभाजी को पांच-हजारी मनसब के लिए विदर्भ में जो जागीर दी थी उसकी आय में से अपना दिया हुआ पैसा लेने का विचार किया। इसलिए उसने उस जागीर का कुछ भाग कुर्क कर लिया। यह सरासर अन्याय और सन्धि का भंग था। अपनी जागीर की ज़ब्ती का समाचार मिलते ही शिवाजी विद्रोही बनकर पुनः मुगलों से लड़ने को तैयार हो गये।

शिवाजी ने पूरी योजनाएँ बनायीं और अपनी सारी शक्ति के साथ मुगल साम्राज्य पर धावा बोल दिया। लगभग साढ़े तीन वर्ष तक विश्राम करने के बाद मराठी सेनाएँ हर हर महादेव की रणहुँकार करती हुई दुश्मनों पर ऐसी टूटीं कि उनके छक्के छूट गये और पुरन्धर की सन्धि के अनुसार जो

किले मुगलों के पास चले गये थे, वे फिर से स्वराज्य में आ गये। शिवाजी का यह आक्रमण इतना वेगवान् था कि देखने वाले चकित रह गये।

योजना बनाकर शिवाजी ने अपनी सेना को कई टुकड़ियों में बांटा और उन्हें एक-साथ मुगलों के इलाके पर हमले करने की आज्ञा दी। उसके अनुसार मराठों के छापामार दस्ते टिड्डीदल की तरह मुगलों पर टूट पड़े और उन्होंने पर्याप्त धन एवं प्रदेश हथिया लिया। विदर्भ की ओर गयी हुई सेना ने देखते-देखते वहां से २० लाख रुपये जमा करके औरंगज़ेब के एक लाख का बदला ले लिया। अहमदनगर, जुन्नर, परिंडा आदि तहसीलों में शिवाजी की सेना ने कई गांवों को लूटा और लोहगढ़, हिंदोला, कर्नाला, रोहिड़ा, माहुली आदि किलों पर अधिकार कर लिया।

इन आक्रमणों का श्रीगणेश सिंहगढ़ की विजय से हुआ। कोंडाणा या सिंहगढ़ का किला राजगढ़ से केवल १० मील की दूरी पर था। इस गढ़ के साथ कई घटनाएँ सम्बद्ध थीं। पहले शाहजी को बीजापुर वालों की कैद से छुड़ाने के लिए यह गढ़ उन्हें देना पड़ा था। उसके बाद उसे जीत लिया गया था। फिर जब वह मुगलों के हवाले किया गया तब शिवाजी की माता वहां थीं, तब से उनके हृदय में वह खटक लगी हुई थी। राजगढ़ से वे जब-जब सिंहगढ़ को देखतीं, एक कसक-सी उनके हृदय में उठती। अतः जब शिवाजी ने मुगलों के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया तो उन्होंने तुरन्त यह मांग की कि सब से पहले सिंहगढ़ पर कब्ज़ा किया जाय। शिवाजी ने भी मां की इच्छा को सिर-आँखों पर लिया।

परन्तु सिंहगढ़ पर अधिकार करना कोई सरल बात नहीं

थी। एक तो गढ़ स्वयं बड़ा दुर्गम था और दूसरे यह कि वहां का राजपूत किलेदार बड़ा शूर एवं जागरूक था। उसका नाम था उदयभान राठौर। जोधपुर के राठौर वंश से ही उसका सम्बन्ध था। उसके अधीन पन्द्रह सौ राजपूतों की बलवती सेना थी। गोला-बारूद, अस्त्र-शस्त्र एवं रसद आदि से यह गढ़ परिपूर्ण था। यह वही गढ़ था, जिसे महीनों घेरा डाले रहने के बाद भी मुगल सेनापति जसवन्तसिंह को असफल होकर लौट जाना पड़ा था। अतः केवल घेरा डालने से वह हाथ आने वाला नहीं था। उसमें युक्ति से ही सफलता मिल सकती थी।

शिवाजी ने सब के सामने जब सिंहगढ़ को जीतने का प्रस्ताव रखा तो उनका शूर बालमित्र तानाजी मालुसरा आगे बढ़ा और उसने सिंहगढ़ पर अधिकार करने का बीड़ा उठाया। जनश्रुति कहती है कि निकट भविष्य में तानाजी के बेटे रायबा का विवाह होने वाला था, जिसका निमंत्रण शिवाजी-जीजाबाई को देने वह अपने भाई सूर्याजी के साथ राजगढ़ गया था। वहां उसे सिंहगढ़ की बात मालूम हुई। वह तुरन्त सिंहगढ़ पर धावा बोलने के लिए तैयार हो गया। जब उससे कहा गया कि पहले वह अपने बेटे का ब्याह कर ले और फिर सिंहगढ़ जीतने का काम हाथ में ले, तो वह बोला, "पहले ब्याह कोंडाणे का, फिर रायबा का।"

इसके अनुसार तानाजी अपने भाई सूर्याजी एवं अन्य तीनसौ मावला जवानों को साथ लेकर ४ फरवरी १६७० की रात को सिंहगढ़ की तलहटी में पहुँचा और अपने दो साथियों को उसने ऊपर भेजा। वहां कोई मार्ग नहीं था। एक टूटी हुई घाटी या सीधा करारा-सा था। इसलिए उस स्थान पर

कोई पहरा नहीं था। तानाजी के साथियों ने ऊपर पहुँच कर रस्सियों की सीढ़ियाँ गाड़ दीं। उन पर से तानाजी और उसके साथी किले पर पहुँच गए। जनश्रुति कहती है कि तानाजी ने एक गोह (छिपकिली की जाति का एक बड़ा जानवर जो अपने पंजों से किसी चीज़ को कसकर पकड़ रखता है।) की कमर में रस्सी बांधकर उसे किले की दीवार पर चढ़ाया और जब वह वहां जमकर बैठ गयी तो रस्सी को पकड़ कर वह ऊपर गया और फिर उसने दूसरी रस्सियां गाड़ दीं जिनके सहारे उसके साथी भी ऊपर पहुँचे।

गश्त लगाने वाले पहरेदारों को तुरन्त आक्रमणकारियों का पता चल गया। उन्होंने अपने सैनिकों को जगा दिया और फिर दोनों में मुठभेड़ हुई। मराठों ने 'हर हर महादेव' की गर्जना करते हुए शत्रुसेना में प्रलय मचा दी। अंधेरी रात होने के कारण शत्रुओं को पता ही नहीं चला कि मराठा सैनिकों की संख्या कितनी है। उन्होंने कभी सोचा तक नहीं था कि इस तरह अचानक मौत की तरह मराठे उनके सामने आ खड़े होंगे। इसलिए उस आकस्मिक आक्रमण से ही उनके प्राण स्तब्ध हो गए। अपनी ओर से उन्होंने बहुत यत्न किया, पर मराठों के सामने वे नहीं टिक सके।

तानाजी और उदयभान लड़ते-लड़ते अचानक एक दूसरे के सामने आ गये। दोनों क्रुद्ध शेरों की तरह लड़े और एक दूसरे के आघातों से कट मरे। कहा जाता है कि ढाल के टूटने के कारण पहले तानाजी मरा, तो उदयभान ने उसके मृत शरीर में लात मारी। यह देखकर तानाजी के भाई सूर्याजी का खून खौल उठा। उसने उदयभान पर ऐसा वार किया कि एक ही झटके में उसका सिर धड़ से अलग हो गया।

जब मराठों को अपने नेता की मृत्यु की खबर मिली तो वे डरकर वापस भागने लगे। इतने में सूर्याजी ने आगे बढ़ कर उन्हें ललकारा, "ऐ वीरो, भागते कहां हो? वे रस्सियां तो कब की काट दी गयी हैं, जिन पर से तुम ऊपर आये थे। अब या तो मर्दों की तरह लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हो जाओ या कायरों की तरह ऊपर से कूद कर आत्मघात कर लो।"

सूर्याजी की इस बात से मराठा सैनिकों में फिर से जोश आ गया और उन्होंने रहे-सहे दुश्मनों का भी सफाया कर दिया। उस रात १२०० राजपूत काम आए। गढ़ पर से नीचे उतर कर भाग निकलने का विफल प्रयास करते हुए भी कई राजपूत मर गए।

सिंहगढ़ पर स्वराज्य का ध्वज लहराने लगा। मराठों ने आग जलाकर इस सफलता की सूचना राजगढ़ स्थित अपने राजा एवं राजमाता को पहुँचा दी।

जनश्रुति के अनुसार जब शिवाजी को इसका पूरा समाचार मिला तो उनके मुँह से यह दुःखपूर्ण उद्‌गार निकला कि "गढ़ आया पर सिंह चला गया।" और तब से कोंडाणा का नाम सिंहगढ़ हो गया। परन्तु इतिहास कहता है कि कोंडाणा का यह नया नाम सन् १६६३ से ही चला आ रहा था।

जो हो, सिंहगढ़ ने शिवाजी की उस महान् विजय का श्रीगणेश किया जो उन्होंने निकट भविष्य में प्राप्त की। इस लड़ाई में शिवाजी के केवल पचास सैनिक काम आए थे। उनके छापामार दस्तों की यही विशेषता थी। कम से कम मूल्य में वे अधिक से अधिक प्राप्ति करते थे।

चूँकि स्वयं औरंगज़ेब ने सन्धि भंग की थी, अतः यह स्वाभाविक ही था कि उसने भी शिवाजी को कुचल डालने की पूरी तैयारी कर ली हो। फिरंगियों से जलसेना की सहायता प्राप्त करके शिवाजी को समुद्र तट से भगा देने का विचार करके उसने फरवरी १६७० में कार्यवाही आरम्भ की। उसने अपनी सेना का बहुत बड़ा भाग जुन्नर के पास जमा किया। एक भाग कल्याण की ओर भेजा गया। औरंगज़ेब ने बीजापुर से भी १२ हज़ार अश्वारोही सैनिकों की मांग की। बीजापुर वाले अच्छी तरह जानते थे कि एक बार शिवाजी की समाप्ति हो जाने पर उनका राज्य भी टिकने वाला नहीं है। इसलिए शिवाजी के विरुद्ध मुगलों की सहायता करने के लिए वे तैयार नहीं थे। फिर भी मुगलों के डर से उन्होंने नवाब बहलोलखाँ को ४ हज़ार घुड़सवारों के साथ भेज दिया। पर उसने शिवाजी के साथ युद्ध नहीं किया। औरंगज़ेब ने अंगरेजों को भी हुक्म दिया कि वे कोंकण स्थित मुगलों के किलों को गोला-बारूद आदि से सहायता पहुँचाते रहें।

शिवाजी अच्छी तरह जानते थे कि मुगलों की सेनाओं को इधर-उधर आने-जाने में बहुत ही समय लग जायगा। बरसात के प्रारम्भ तक मुगल सेनाएँ औरंगज़ेब की आज्ञा के अनुसार इधर-उधर भाग-दौड़ करती रहीं और वर्षा शुरु होते ही छावनी लगाकर बैठ गयीं। इससे शिवाजी ने बहुत लाभ उठाया और बड़ी फुर्ती से उन्होंने अपने गये हुए किलों एवं प्रदेशों को वापस जीत लिया।

शिवाजी के लिए एक अत्यन्त अनुकूल बात इस काल में हुई, वह थी मुअज़्ज़म और दिलेरखाँ में फूट। दिलेरखाँ को

शिवाजी से बहुत द्वेष था, वह उन्हें जड़मूल से नष्ट कर देना चाहता था। इसलिए वह सदा ही शिवाजी के प्रदेशों को लूटता रहता था। इसके विपरीत मुअज़्ज़म के दिल में शिवाजी के प्रति आदर एवं स्नेह की भावना थी। दक्षिण की सर्वसाधारण जनता को इस बात का पूर्ण विश्वास हो गया था कि मुअज़्ज़म मराठों की सहायता से अपने पिता के राज्य-सिंहासन पर अधिकार करने का षड्यन्त्र रच रहा है और इसी कारण वह अकर्मण्य बैठा मराठों के विरुद्ध कोई भी कार्यवाही नहीं करता तथा इससे शिवाजी का साहस बढ़ गया है और इसीलिए मुगल प्रदेशों पर मराठों के आरम्भिक आक्रमण भी सफल होते जा रहे हैं।

इसलिए जब मुअज़्ज़म ने सेनापति दिलेरखाँ को मिलने के लिए औरंगाबाद बुलाया तो वह गोंडवन के देवगढ़ किले का घेरा छोड़कर पहले नागपुर पहुँचा और वहां से, औरंगाबाद से २५ मील दूर, पायरी नामक गाँव तक पहुँच गया। पर वहां जाने पर उसे डर लगने लगा कि अगर वह मुअज़्ज़म की सेवा में उपस्थित हुआ तो वह कैद कर लिया जायगा, या छल से उसकी हत्या कर दी जायगी। इसलिए वह वहीं रुका रहा। दिलेर की इस अवज्ञा से क्रुद्ध होकर मुअज़्ज़म तथा उसके प्रधान सलाहकार जसवन्तसिंह ने बादशाह को लिखा कि दिलेरखाँ की अफगान नियंत्रण सेना उसके अधिकार में नहीं रहती। वह गरीब प्रजा को लूटती रहती है, जिसे दिलेरखाँ नहीं रोकता। इससे राज्य की बहुत हानि हो रही है। कुछ अन्य व्यक्तियों ने भी इसी तरह के पत्र औरंगज़ेब को लिखे थे। उन्होंने औरंगज़ेब से यह भी शिकायत की कि दिलेरखाँ विद्रोही हो गया है। यह शाहज़ादे

के आदेशों का पालन नहीं करता। उधर दिलेरखाँ ने पहले ही औरंगज़ेब को मुअज़्ज़म के विरुद्ध अनेक पत्र लिखे थे और यह सूचना दी थी कि "शाहज़ादा शिवाजी से मिला हुआ है। इसलिए उसने शिवाजी के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की है और हाथ पर हाथ धरे आराम से बैठा है।"

औरंगज़ेब के लिए यह परिस्थिति एक कठिन समस्या हो गयी। यदि वह दिलेरखाँ को वापस बुलाता तो मुअज़्ज़म पर कोई नियंत्रण नहीं रहता; जिसके विषय में स्वयं उसे भी शंका थी। यदि वह मुअज़्ज़म को वापस बुलाता तो शाहज़ादे का अपमान होता और दिलेरखाँ उद्दण्ड हो जाता। अतः उसने अपने खानसामाँ इफ़्तिखारखाँ को वास्तविक दशा का पता लगाने और उन दोनों में समझौता कराने के लिए भेजा। परन्तु उससे उलटा ही परिणाम निकला। इफ़्तिखारखाँ ने उन दोनों में सन्धि कराने के स्थान पर उनको एक दूसरे के विरुद्ध और अधिक भड़काया। परिणामस्वरूप दिलेरखाँ को पकड़ने के लिए मुअज़्ज़म ने उस पर धावा बोल दिया। शाहजादे से लड़ने की हिम्मत दिलेरखाँ में नहीं थी। इसलिए वह अपने तंबू तथा दूसरा सामान जलाकर दिल्ली की दिशा में भागने लगा। उसका पीछा करते हुए मुअज़्ज़म एवं जसवन्तसिंह भी अपनी सेनाओं सहित निकल पड़े। उन्होंने शिवाजी से भी सहायता की प्रार्थना की। इस प्रकार मुगल सेना शिवाजी के विरुद्ध लड़ने के स्थान पर आपसी संघर्ष में ही गुँथ गई। शिवाजी को यह सारी परिस्थिति ज्ञात थी। इस अवसर से पूरा-पूरा लाभ उठाकर इसी समय उन्होंने अपनी सारी शक्ति एकत्रित करके मुगलों के प्रदेशों पर धावे बोलने शुरु किए।

गुजरात का सूबेदार बहादुरखाँ दिलेरखाँ का समर्थक हो गया। उसने दिलेर की स्वामिभक्ति तथा पिछली सेवाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा से भरा हुआ एक पत्र औरंगज़ेब को लिखा और साथ ही यह भी सिफारिश की कि उसकी अधीनता में दिलेरखाँ को काठियावाड़ का फौजदार नियुक्त किया जाय। बादशाह ने बहादुरखाँ के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और मुअज़्ज़म को वापस औरंगाबाद जाने तथा जसवन्तसिंह को बुरहानपुर में रहने की आज्ञा दी। इसके अनुसार सितम्बर १६७० तक मुअज़्ज़म औरंगाबाद लौट आया।

सूरत को लूट और जलाकर जब से शिवाजी लौटे थे, तब से बीच-बीच में उनके पुनः आक्रमण की अफवाहें सूरत में फैल जाया करती थीं और लोग घबरा कर इधर-उधर भागने लगते थे। इसी तरह की एक अफवाह सन् १६७० ई० के प्रारम्भ में भी फैली। इसलिए गुजरात का सूबेदार बहादुरखाँ सूरत की रक्षा के लिए पहुँचा। मगर उस समय शिवाजी अपने किलों को वापस लेने में लगे हुए थे, और कुछ दिन प्रतीक्षा करके बहादुरखाँ अहमदाबाद लौट आया। इधर बरसात के दिनों में शिवाजी को कुछ अवकाश मिला। वे अच्छी तरह जानते थे कि वर्षा के थमते ही मुगल सेनाएँ आक्रमण शुरु कर देंगी, अतः उससे पहले ही एक जोर का धक्का मुगल साम्राज्य को देने का उन्होंने विचार किया और वे अचानक पंद्रह हजार सैनिकों सहित सूरत पर टूट पड़े। सूरत के नगर-रक्षक को इसकी खबर मिल गयी थी। परन्तु उसने शहर की रक्षा का कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया। संभवतः उसने सोचा होगा कि यह भी सदा की तरह अफवाह ही है।

अतः वह सचेत नहीं हुआ। जब ३ अक्तूबर को शिवाजी सचमुच ही अपनी सेना लेकर सूरत पहुँचे तो नगर-रक्षक ने अपने तीनसौ सैनिकों की सहायता से उनको रोकना चाहा। इस समय तक औरंगज़ेब की आज्ञा से नगर के चारों ओर नई दीवार बना दी गयी थी। पर पहाड़ी किलों को जीतने वाले मराठों के सामने बेचारी यह दीवार भला कितनी देर टिक सकती थी ? कुछ समय तक सामना करने के बाद रक्षक किले में भाग गये। अंगरेज, डच, फरांसीसी आदि विदेशियों के पास इस समय रुपया-पैसा या माल नहीं था, इसलिए उनसे न लड़ने में ही शिवाजी ने बुद्धिमत्ता समझी और उन्होंने दो-तीन दिन तक सूरत शहर को लूटा और जलाया। मुसलमान इतिहासलेखकों ने लिखा है कि शिवाजी को ५३ लाख रुपये की लूट मिली। मराठा इतिहास लेखकों ने लूट की कीमत ५ करोड़ रुपया बतायी है। कुछ लोगों की राय में वह ६६ लाख की थी। परन्तु इस आंकडे से सूरत की वास्तविक हानि का पूरा पता नहीं लग सकता। उस युग के इस सब से धनवान् बन्दरगाह का सारा व्यापार ही इस लूट के फलस्वरूप चौपट हो गया। शिवाजी के वापस लौटने के कई वर्ष बाद तक भी मराठा सेना के उस ओर जाने की सूचना पाकर या उनके आक्रमण की सम्भावना के झूठे समाचारों से ही सूरत नगर भय से आतंकित हो उठता था। ऐसे अवसरों पर प्रति बार व्यापारी जल्दी-जल्दी अपना सामान जहाजों पर रख आते थे, नागरिक गाँवों में भाग जाते थे और युरोपीय व्यापारी सुवाली नामक सुरक्षित स्थान में आश्रय लेते थे। इस प्रकार मराठों के आक्रमण तथा

लूट के आतंक और त्रास के कारण सूरत से सारा विदेशी व्यापार पूर्णतया नष्ट हो गया।

इस बार शिवाजी ने प्रकटतया यह घोषणा की कि मुगलों के साथ उन्हें जो युद्ध करना पड़ता था उसके खर्चे के लिए वे पैसा चाहते थे और इसीलिए वे सूरत को दोबारा लूटने गये थे। ५ अक्तूबर को गुप्तचरों द्वारा शिवाजी को यह समाचार मिला कि बुरहानपुर से दाऊदखाँ कुरैशी सूरत की रक्षा के लिए आ रहा है। अतः वे बड़ी तेजी से लूट का माल साथ लेकर सूरत से वापस लौटे। जाते समय उन्होंने सूरत के व्यापारियों को यह आश्वासन दिया कि यदि प्रतिवर्ष बारह लाख रुपये वे उन्हें देते रहें तो उन्हें किसी तरह का कष्ट नहीं दिया जायगा। इस बार शिवाजी के पास काफी सेना थी, इसलिए उन्होंने अंगरेजों आदि को भी धमकाने का प्रयत्न किया। फ्रांसीसियों ने पहले ही शिवाजी को भेंट एवं गोला-बारूद अर्पण करके उनसे मित्रता कर ली। अंगरेजों ने मराठों का डट कर मुकाबला किया पर अन्त में उन्हें भी मूल्यवान् वस्त्र एवं शस्त्रास्त्र देकर उनसे मित्रता करनी पड़ी।

शिवाजी सूरत जाते समय सागर तट के प्रदेश से होते हुए गये पर लौटते समय वे बागलाण, नासिक होते हुए लौटे। उधर मुगलों का सरदार खानदेश का सूबेदार दाऊदखाँ कुरेशी बुरहानपुर में था। जब मुअज़्ज़म को सूरत की दुर्गति का हाल मालूम हुआ तो उसने दाऊदखाँ को शिवाजी पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। दाऊदखाँ तुरन्त निकला परन्तु अब तक शिवाजी बागलाण पहुँच चुके थे। जब दाऊदखाँ को इसका पता चला तो उसने रातोंरात कूच करके

उन्हें बीच में ही रोक लिया। पर उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसके प्रतिरोध के लिए शिवाजी की सेना बिलकुल तैयार थी। शिवाजी ने लूट का माल लादे हुए घोड़ों के साथ पांच हज़ार पैदलों को आगे भेज दिया और शेष दस हज़ार घुड़सवारों के साथ दाऊदखाँ का सामना करने के लिए रुक गये।

मुगल सेना के हरावल का नेतृत्व इखलासखाँ कर रहा था। उसने अपनी सारी सेना के आने की भी प्रतीक्षा न करके मराठों पर आक्रमण कर दिया। पर वह शीघ्र ही घायल होकर घोड़े से गिर पड़ा। इतने में बहुत से सैनिकों के साथ दाऊदखाँ स्वयं वहां आ पहुँचा, जिससे मुगलों को बल प्राप्त हुआ। कई घण्टों तक घमासान युद्ध होता रहा। मुगल सेना के बुँदेले पैदल सैनिकों ने अपनी बन्दूकें और तोपें चलाकर मराठों को बड़ी देर तक रोक रखा। मगर मराठों ने भी अपने आक्रमण जारी रखे, जिससे तीन हज़ार मुगल सैनिक मारे गये। मुगलों के तोपखाने के दारोगा मीर अब्दुल माबूद और उसके बेटे को मारकर मराठों ने तोपखाने के निशान एवं घोड़ों पर अधिकार कर लिया। अन्त में पूरी तरह हारकर दाऊदखाँ पीछे हट गया। शिवाजी लूटी हुई सम्पत्ति एवं घोड़े लेकर रायगढ़ पहुँचे। डिंडोरी के इस युद्ध का मुगलों पर इतना बुरा प्रभाव पड़ा कि एक महीने तक उनसे कुछ भी करते-धरते न बना।

विदर्भ में कारंजा नाम का एक अत्यन्त समृद्ध शहर था। यह भी मुगलों का एक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक नगर था। शिवाजी ने अपनी कृपादृष्टि इस नगर की ओर भी फेरी और वहां के धनिकों को धनमुक्त कर दिया। महीन कपड़ा,

सोना, चाँदी आदि कुल मिलाकर कोई एक करोड़ रुपये का माल वहां की लूट में मराठों के हाथ लगा, जिसे वे चार हज़ार बैलों और गधों पर लाद कर ले गए। इस समय और एक नई बात शिवाजी ने की। वे कारंजा के सभी धनिकों को पकड़ कर अपने साथ ले गए और उनसे सालाना जुरमाने की रकम निश्चित करा के ही उन्हें छोड़ा। शिवाजी के सेनापति प्रतापराव गुजर ने विदर्भ के दूसरे सम्पन्न शहरों को लूटा और करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति मराठों के खजाने में पहुँचायी। उसने गाँव के पटेल-पटवारियों से यह लिखवा लिया कि वे प्रतिवर्ष गाँव की आमदनी का चौथा हिस्सा (चौथ) मराठों को देते रहेंगे। उनको रसीदें भी दी जाने लगीं। जो गाँव अपनी रसीदें दिखाते उन्हें फिर कोई कष्ट नहीं दिया जाता था।

शिवाजी नवम्बर १६७० में बुरहानपुर पहुँच गये थे। उस समय वहां महाराजा जसवन्तसिंह विद्यमान थे, अतः शहर पर धावा न बोलकर दो मील की दूरी पर स्थित बहादुरपुर नामक स्थान को शिवाजी ने अच्छी तरह लूटा। इसी काल में पेशवा मोरो त्रिम्बक पिंगले की अधीनता में मराठों का एक दल पश्चिमी खानदेश और बागलाण को लूट रहा था। मोरो-पन्त ने नासिक के पास का त्र्यंबकगढ़ भी ले लिया। ●

अन्य लड़ाइयां

इस समय जसवन्तसिंह, दिलेरखाँ, बहादुरखाँ, दाऊदखाँ, मुहम्मद अमीन, इखलासखाँ, लोदीखाँ आदि कई छोटे-बड़े मुगल सरदार बड़ी-बड़ी सेनाओं सहित शिवाजी को रोकने की चेष्टा कर रहे थे, परन्तु उसका कुछ भी प्रभाव नहीं हो रहा था। इसका प्रधान कारण यह था कि उन सरदारों में आपसी ताल-मेल नहीं था; वे एक दूसरे के विरुद्ध षड्यन्त्र करने में ही लगे रहते थे। औरंगज़ेब के संशयी स्वभाव के कारण किसी भी सरदार को अपने स्थान के विषय में निश्चिन्तता नहीं होती थी। इसलिए भी वे एक तरह से बेगार टालने के लिए ही लड़ते थे। शाहज़ादा मुअज़्ज़म का मन भी लड़ाइयों में नहीं लगता था। इसीलिए मुगलों को मराठों के हाथों लगातार बुरी तरह पराजित होना पड़ रहा था।

औरंगज़ेब ने मुगल सेना की निरन्तर विफलता को सुनकर जान लिया कि दक्षिण की परिस्थिति सचमुच ही बहुत गम्भीर हो गयी है। संभवतः, उसे अपने पुत्र पर भी संदेह

हुआ कि वह छिपे तौर पर शिवाजी की सहायता न कर रहा हो ! जसवन्तसिंह और मुअज़्ज़म में बड़ी मित्रता थी। अतः उन दोनों को अलग करने के लिए उसने जसवन्तसिंह को वापस बुला लिया और महाबतखाँ नामक अपने प्रसिद्ध एवं अनुभवी सरदार को दक्षिण की सारी मुगल सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति नियुक्त करके जनवरी १६७१ में बहुत से सैनिक धन-धान्य एवं युद्ध-सामग्री के साथ दक्षिण भेजा। मगर महाबतखाँ को भी कोई विशेष सफलता नहीं मिली और वह महीनों तक कुछ नहीं कर सका। औरंगज़ेब उससे भी असन्तुष्ट हो गया। उसे संदेह होने लगा कि कहीं महाबतखाँ ने शिवाजी के साथ कोई गुप्त समझौता तो नहीं कर लिया है ? अतः उसने मालवा से दिलेरखाँ और गुजरात से बहादुरखाँ को दक्षिण भेजा। किन्तु वे भी कोई विशेष पराक्रम नहीं दिखा सके।

बागलाण में साल्हेर का किला बड़ा ही मजबूत था। शिवाजी ने किलेदार फतहउल्लाखाँ को मार कर इस किले पर अधिकार कर लिया था। उस समय दाऊदखाँ किले को बचाने के लिए ससैन्य मुल्हेर तक जा पहुँचा था, परन्तु वहां से आगे नहीं बढ़ सका था, क्योंकि तब तक रात हो चुकी थी और उसकी सेना बहुत पिछड़ गयी थी। साल्हेर के आत्मसमर्पण की खबर उसे रास्ते में ही मिली और उसे हाथ मलते हुए वापस लौट जाना पड़ा। तब से मुगल सरदारों की आँखों में यह साल्हेर का किला किरकिरी की तरह खटकता था। अतः जब औरंगज़ेब ने बहादुरखाँ और दिलेरखाँ को दक्षिण भेजा, तो वे गुजरात से बागलाण आए और उन्होंने साल्हेर के किले का घेरा डाला। उसके बाद ही वर्षा

शुरु हो गयी। वर्षा के दिनों में मराठों ने कुछ हलचल नहीं की। जब वर्षा रुकी तो उन्होंने घेरा डाले बैठी सेना पर ऐसे प्रबल आक्रमण शुरु किए कि उनके हाथों के तोते उड़ गए! बहादुर और दिलेर समझ गये कि साल्हेर जीतना टेढ़ी खीर है, अतः इखलासखाँ मियाना, बहलोलखाँ, अमरसिंह चन्द्रावत, मुहकमसिंह चन्द्रावत और अन्य सेनानायकों को घेरा डाले रखने को छोड़ कर वे दक्षिण की ओर बढ़े।

दिलेरखाँ प्रथम बार जब मिर्जा राजा जयसिंह के साथ महाराष्ट्र आया था तब उसने देखा था कि पूना और उसके आसपास के इलाके पर अधिकार कर लेने से शिवाजी झुक जाता है और सन्धि की बातें करने लगता है। अतः वह बहादुरखाँ को साथ लेकर जनवरी १६७२ को पूना पर टूट पड़ा। इस बार उसने पूना को जलाकर ही सन्तोष नहीं माना। उसने ९ वर्ष से अधिक आयु वाले स्त्री-पुरुषों का कत्लेआम भी किया। इससे शिवाजी का खून खौल उठा, परन्तु इस समय उन्होंने एक और ही मार्ग अपनाया। वे चाहते तो पूना के इलाके में अपनी सारी सेना को एकत्रित करके मुगलों का मुकाबला कर सकते थे, पर उससे उस प्रदेश की और अधिक हानि होती। इसलिए उन्होंने दूसरा मार्ग अपनाया। कहावत है, 'नाक दबाने से मुँह अपने आप खुल जाता है।' शिवाजी ने दिलेरबहादुर की नाक दबाने का निश्चय किया। यह नाक थी साल्हेर का घेरा।

वास्तव में यह किला खुले मैदानों में था। इसलिए शिवाजी वहाँ लड़ना टाल रहे थे। परन्तु जब कोई दूसरा उपाय नहीं रहा तो उन्होंने पेशवा मोरोपन्त, सेनापति प्रतापराव गुजर, आनन्दराव मकाजी, सूर्यराव काकड़े आदि सरदारों

को साल्हेर भेजा। इन सब ने घेरा डाले बैठी साठ हज़ार मुगल सेना पर धावा बोल दिया। मराठों के पास लगभग चालीस हज़ार सैनिक थे। उन्होंने इतने जोश के साथ लड़ाई की कि उनके सामने मुगल सेना ज्यादा देर टिक नहीं सकी। युद्ध में दस हज़ार से अधिक सैनिक खेत रहे। रक्त-माँस से भूमि लथपथ हो गयी। अन्त में सेनापति इखलासखाँ और बहलोलखाँ, मुहकमसिंह, दारकोजी भोंसला आदि सरदार मराठों द्वारा पकड़े गये। अमरसिंह चंद्रावत मारा गया। शिवाजी का बालमित्र एवं शूर सरदार सूर्यराव काकड़े भी दुश्मन की गोली का शिकार हो गया। पकड़े हुए मुगल सरदारों को शिवाजी ने ससम्मान वापस भेज दिया।

विजय के उत्साह में मराठा सैनिक समीप के मुल्हेर किले पर भी टूट पड़े और उस पर शीघ्र ही अधिकार कर लिया। जब इस तरह बागलाण में मराठों ने प्रलय मचायी तो दिलेरखाँ पूना छोड़कर चुपचाप बागलाण चला आया। शिवाजी की युक्ति सफल हो गयी। पेशवा मोरोपंत साल्हेर-मुल्हेर की रक्षा के लिए पर्याप्त सेना एवं सामग्री छोड़कर आराम से मुगलों का इलाका लूटते हुए कोंकण लौट आये।

परन्तु इन विजयों का औरंगज़ेब पर बहुत ही बुरा प्रभाव हुआ। वह आग बबूला हो उठा। उसने अपने सूबेदारों को लिखा, "हमारा इलाका दुश्मन ने जीत लिया और तुम जैसे सरदारों को लड़ाई में मटियामेट कर दिया, यह कितने शर्म की बात है। तुम लोग जिन्दा क्यों रहे? दुश्मन के साथ लड़ते-लड़ते मर क्यों नहीं गये? अब तुम लोग शिवाजी के सब शत्रुओं अर्थात् आदिलशाह, कुतुबशाह, फिरंगी, हब्शी आदि को साथ लेकर शिवाजी के इलाके को कब्ज़े में करो।

तब फिर वह अपने किलों में कितने दिन छुपकर बैठेगा ? उसे मजबूर होकर तुम्हारी शरण में आना ही पड़ेगा।"

इस पर बहादुरखाँ और दिलेरखाँ ने बादशाह को लिखा कि, "जहाँपनाह ने शिवाजी को आगरा में इतनी कड़ी निगरानी में रखा था, फिर भी वह पक्षी की तरह अपने बेटे को साथ लेकर नौ दो ग्यारह हो गया। हमारी तो शक्ति ही क्या है ? फिर भी हम लोग यत्न कर रहे हैं, मगर जहाँपनाह जानते हैं कि शिवाजी के पास एक से एक बढ़कर मज़बूत किले हैं और उसके दुर्गम प्रदेशों में सैंकड़ों मन गल्ला पैदा होता है। इसलिए सौ बरस तक हमारे सर मारते रहने पर भी हम उसे परास्त नहीं कर सकेंगे। उससे सन्धि करने का ही एकमात्र मार्ग हमारे सामने है। अतः हमने अपना एक ब्राह्मण दूत उसके पास भेजा है। उसे स्वीकार कर शिवाजी ने भी अपने दूत काज़ी हैदर को सन्धि की बातचीत करने के लिए हमारी सेवा में भेजा है, अतः आपसे प्रार्थना है कि सन्धि की आज्ञा दें।" परन्तु औरंगज़ेब इसके लिए तैयार नहीं हुआ। काज़ी हैदर को मुगलों ने परांडे के किले में कैद कर लिया।

औरंगज़ेब ने महाबतखाँ को वापस बुलाकर अफगानिस्तान भेज दिया। जाते समय वह रास्ते में ही मर गया। फिर बादशाह ने मुअज़्ज़म को भी वापस बुलाकर बहादुरखाँ को दक्षिण का सूबेदार बनाया और दिलेरखाँ को उसकी अधीनता में नियत किया। पर इन परिवर्तनों से कोई विशेष फल नहीं निकला।

शिवाजी चाहते थे कि अंगरेज, पुर्तगाली, हब्शी आदि विदेशी लोगों को भारत के किनारे पर अड्डा न जमाने दिया

जाय। इसलिए अवसर मिलते ही वे उन लोगों को सताने या दबाने की चेष्टा करते रहते थे। इस नीति के अनुसार उनके पेशवा मोरो त्र्यम्बक पिंगले ने सन् १६७२ ई० के मई महीने में पुर्तगालियों के चौल, वसई आदि नगरों को खूब लूटा और उनसे चौथ मांगी। वहां से वे कोली राजा विक्रमशाह की राजधानी जव्हार गये। आक्रमण की खबर सुनते ही राजा विक्रमशाह मुगलों की शरण में गया। जव्हार में मराठों को १७ लाख रुपयों का माल मिला। वहां से उत्तर की ओर बढ़कर उन्होंने रामनगर नाम का दूसरा कोली राज्य भी जीत लिया। वहां का राजा सोमशाह पुर्तगालियों की शरण में दमण भाग गया। यह सोमशाह दमण के पुर्तगालियों से चौथ वसूल करता था। जब रामनगर पर मराठों का अधिकार हो गया, तो उन्होंने पुर्तगालियों से कहा कि वे नियत चौथ अब मराठों को दिया करें। पहले तो पुर्तगाली इनकार करते रहे, पर बाद में वे चौथ देने को तैयार हो गए।

जव्हार सूरत से ८० मील की दूरी पर स्थित है और रामनगर ५० मील की दूरी पर। रामनगर और जव्हार पर मराठों का अधिकार हो जाने से अब कल्याण से सूरत जाने का उत्तरी कोंकण होता हुआ यह सीधा सुरक्षित एवं सुगम रास्ता खुल गया, जिससे सूरत के बन्दरगाह को दक्षिण की ओर से होने वाले आक्रमणों से किसी भी प्रकार बचा सकना सर्वथा असंभव हो गया। अब सूरत नगर में मराठों के संभावित आक्रमण का आतंक फैल जाना प्रतिदिन की साधारण बात हो गयी।

रामनगर के पास के पड़ाव से मोरो त्र्यम्बक पिंगले ने तीन

पत्र सूरत के अधिकारी तथा प्रमुख व्यापारियों को भेजे और उनसे सूरत की चौथ के चार लाख रुपयों की मांग की तथा रुपये न देने की स्थिति में सूरत पर चढ़ाई करने की धमकी दी।

पर वह केवल धमकी ही थी। क्योंकि सूरत जाने के स्थान पर मोरोपन्त अचानक नासिक त्र्यंबक की ओर चले गये और वहां के थानेदार कल्याणजी जाधवराव को पराजित करके उन्होंने उस प्रदेश पर अधिकार कर लिया। इसके बाद फिर कभी सूरत पर आक्रमण नहीं किया गया, परन्तु जव्हार-रामनगर पर मराठों का अधिकार हो जाने से सूरतवासी अत्यन्त भयभीत हो गए थे। वहां का सूबेदार शिवाजी को खंडनी देने के लिए शहर के व्यापारियों से अंधाधुंध पैसा प्राप्त करता था और स्वयं खा जाता था। इस कारण सूरत का व्यापार बहुत घट गया और उसके बाद उस नगर को उसका पहले का वैभव फिर कभी प्राप्त नहीं हुआ। आगे चलकर बम्बई के बढ़ जाने से सूरत की प्रतिष्ठा पूर्णतः नष्ट हो गयी।

शिवाजी चाहते थे कि सारे भारत में मुगल सत्ता के विरुद्ध विद्रोह करने वाले वीर पुरुष खड़े हो जायँ। अतः जब कोई महाराष्ट्र से बाहर का व्यक्ति उनसे मिलने आता तो वे उससे कहते कि आप अपने प्रदेश में जाकर मेरी तरह ही स्वराज्य के लिए प्रयत्नशील हों। इसके उदाहरणस्वरूप शिवाजी-छत्रसाल के सम्बन्धों का उल्लेख किया जा सकता है। बुन्देल-खंड के स्वातन्त्र्य-योद्धा चंपतराय के सुपुत्र राजा छत्रसाल भी उन्हीं की तरह स्वतंत्रता देवी के उपासक थे। पर दुर्भाग्य से उन्हें मुगलों की नौकरी करनी पड़ी। वे मिर्जा

राजा जयसिंह के पास चले गए। उन्होंने छत्रसाल को दिलेरखाँ के सपुर्द कर दिया। दिलेरखाँ की सेना में छत्रसाल ने अपनी तलवार के जौहर दिखलाये। पर उन्हें दासता में सुख नहीं था। वे चुपके से शिवाजी से मिलने गये और उन्होंने शिवाजी से प्रार्थना की कि वे उन्हें अपनी सेना में नौकरी दें। तब शिवाजी ने उनसे कहा, "छत्रसाल जी, आप तो क्षत्रियों के सरताज हैं। आप किसी की नौकरी क्यों करना चाहते हैं? आप अपने देश बुन्देलखंड जाइए, वहां मुगलों के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा करके अपना राज्य स्थापित कीजिए। आप और हम मिलकर इस अत्याचारी सत्ता को मिट्टी में मिलाएंगे।" इस प्रकार शिवाजी से प्रेरणा पाकर छत्रसाल बुन्देलखंड चले गये और उन्होंने वहां अपना राज्य स्थापित किया। मराठों और बुन्देलों का यह सम्बन्ध झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के समय तक बना रहा।

इसी प्रकार गोलकुंडा के कुतुबशाह अबुलहसन के प्रधान-मंत्री मादण्णा से भी शिवाजी ने मित्रता की और मुगलों की सत्ता के विरुद्ध दक्षिण में एक दृढ़ मोर्चा तैयार कर लिया। मादण्णा से शिवाजी के कार्य में पर्याप्त सहायता मिली।

शिवाजी की यह दृढ़ धारणा थी कि स्वराज्य का जो कार्य उन्होंने उठाया था वह ईश्वरीय कार्य था, अतः, परमेश्वर के भक्तों के आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए वे सदा उत्सुक रहते थे। वे साधु-पुरुषों के पूजक थे। उनके जीवन पर लगभग चौदह साधु-सन्तों का प्रभाव पड़ा था। उनमें ब्राह्मण थे, अब्राह्मण थे और बाबा याकत जैसे मुसलमान भी थे। फिर भी उनका सबसे अधिक सम्बन्ध समर्थ रामदास

के साथ रहा जो शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र संभाजी के साथ भी बना रहा। समर्थ रामदास को मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर किये जाने वाले अत्याचारों से बड़ा दुःख होता था, अतः उन्होंने अपने ब्रह्मचारी शिष्यों के द्वारा जनजागृति का कार्य चलाया। उन्होंने स्थान-स्थान पर हनुमान के मन्दिरों एवं अखाड़ों की स्थापना की, जिससे जनता में व्यायाम के प्रति रुचि उत्पन्न हुई। आज भी महाराष्ट्र में शायद ही ऐसा कोई गाँव हो, जहां मारुति का मन्दिर और अखाड़ा न हो। सन् १६७२ ई० के अगस्त मास में शिवाजी महाराज समर्थ रामदास के दर्शनों के लिए चाफल गये। समर्थ के व्यक्तित्व से वे इतने प्रभावित हुए कि कुछ दिन तक वे वहीं रहे। इसके बाद उनमें घनिष्ठता हो गई। शिवाजी के कार्य की समर्थ ने भूरि-भूरि प्रशंसा की, जिससे उनमें और भी उत्साह आ गया। जनश्रुति कहती है कि एक बार शिवाजी ने अपने सारे राज का दानपत्र लिख कर समर्थ की झोली में डाल दिया। उसे स्वीकार कर रामदास ने उसे शिवाजी को वापस लौटा दिया और अपने स्वामित्व के चिह्न स्वरूप मराठी राज्य का झण्डा भगवा कर देने को कहा। तब से मराठों का ध्वज भगवा हो गया। पर इतिहास इस जनश्रुति की साक्षी नहीं देता। संभवतः शुरु से ही शिवाजी का झण्डा भगवा ही था।

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त तुकाराम के भी शिवाजी शुरु से ही भक्त थे। वे कई बार उनका कीर्तन सुनने भी जाते थे। एक बार उन्होंने तुकाराम महाराज के सम्मान के लिए पालकी, छत्र, घोड़ा, आफताबी, मुहरें आदि वस्तुओं की भेंट

भी भेजी, मगर तुकाराम ने यह कह कर वह सब वापस लौटा दिया कि :—

दिवटया छत्री घोड़े।
हे तो बर्यान्त न पड़े॥

(अर्थात् पलीते, छत्र, घोड़े वग़ैरह से कोई कल्याण नहीं होगा।)

ऐसे ही एक साधु पुरुष कोल्हापुर के पाटगाँव नामक गाँव में रहने वाले मौनी बाबा थे। जब शिवाजी दक्षिण दिग्-विजय के लिए निकले तो वे पाटगाँव जाकर मौनी महाराज के दर्शन करके ही आगे बढ़े। दो वर्ष बाद वापस लौटते हुए भी उन्होंने मौनी बाबा के दर्शन एवं आशीर्वाद प्राप्त किए थे। जनश्रुति कहती है कि ये मौनी बाबा अब्राह्मण थे और जनसाधारण में वेदान्त का प्रचार करते थे। भला उच्च वर्ण के लोग इस बात को कैसे सहन करते? उन्होंने मौनी बाबा को धमकी दी कि यदि उन्होंने वेदान्त का प्रचार करना बन्द न किया तो वे उसकी जिह्वा काट लेंगे। तब बाबाजी ने यही उचित समझा कि मौन धारण किया जाय। तब से वे मौन रह कर जनसेवा करते रहे। इन्हीं की स्मृति में गारगोटी में आजकल मौनी विद्यापीठ नामक ग्रामीण शिक्षा संस्था चल रही है।

राज्याभिषेक से पहले

निदान मुगलों के सरदार एवं सेनापति शिवाजी से लड़ते-लड़ते थक गए और उनसे सन्धि करने के लिए लालायित हो उठे। मगर दिल्ली में बैठा औरंगज़ेब स्वीकृति नहीं दे रहा था, इसलिए युद्ध किसी तरह घसिटता हुआ चला जा रहा था। उधर बीजापुर और गोलकुंडा के सुलतान भी शिवाजी के पराक्रमों को देखकर उनसे मित्रता के सम्बन्ध बनाये हुए थे। बीजापुर वालों को दबाव के कारण शिवाजी के विरुद्ध अपनी सेनाएँ भेजनी पड़ती थीं; पर वह एक तरह की बेगार ही होती थी। क्योंकि वे अच्छी तरह जानते थे कि शिवाजी का पराभव हो जाय तो मुगल सम्राट् बीजापुर को भी हड़पे बिना नहीं रहेगा।

अब वे सोचने लगे कि शीघ्र ही विधिवत् अपना राज्याभिषेक कराया जाय। इतने में अचानक २१ अप्रैल १६७२ को गोलकुंडा के सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाह का देहान्त हो गया और उसका जमाई अब्दुल हसन तानाशाह उसकी गद्दी पर बैठा। तब अपने पुराने सम्बन्धों को स्थिर रखने की

दृष्टि से शिवाजी ने अपने राजदूत निराजीपन्त को भागानगर (हैदराबाद) भेजा और पुरानी मित्रता-सन्धि को पुनः दृढ़ कर लिया। पुरानी सन्धि के अनुसार कुतुबशाह की ओर से शिवाजी को प्रति वर्ष एक लाख होन मिलते थे। तानाशाह ने उस सन्धि को स्वीकार किया और छियासठ हजार होन तुरन्त दे भी दिये।

इसके थोड़े ही दिनों बाद, २४ नवम्बर १६७२ के दिन बीजापुर का सुलतान अली आदिलशाह भी मर गया। उसने शिवाजी को खंडनी आदि देकर उनसे मित्रता रखी थी। इस कार्य में उसका प्रधान-मंत्री अबुल मुहम्मद भी सहयोग देता था। परन्तु अली आदिलशाह की मृत्यु के बाद उसके अवयस्क पुत्र सिकन्दर आदिलशाह को, जो उस समय केवल चार वर्ष का था, गद्दी पर बिठाकर हब्शी सरदार, अब्दुल मुहम्मद के स्थान पर वज़ीरे आज़म बन गया। सन् १६६४ में शिवाजी ने इस खबासखाँ को बुरी तरह परास्त किया था। तब से वह उनसे द्वेष रखता आ रहा था। अतः यह स्पष्ट था कि अब बीजापुर की सत्ता शिवाजी के साथ मैत्री के सम्बन्ध नहीं रख सकेगी। यह भी डर था कि खबासखाँ खुल्लमखुल्ला मुगलों से मिलकर शिवाजी के लिए भय का कारण न बन जाय और किसी दिन बीजापुर का समूचा राज्य ही औरंगज़ेब को सौंप दे। आदिलशाही के विकास में शिवाजी के पिता शाहजी ने बहुत कष्ट उठाये थे और इसीसे उस राज्य के प्रति शिवाजी के मन में भी एक तरह का ममत्व था। अतः यह स्वाभाविक ही था कि उस राज्य को मुगलों के अधिकार में जाते देखना उनके लिए कठिन होता। उससे तो स्वयं उसे जीत लेना उन्हें अधिक रुचिकर था। इस दृष्टि से उन्होंने

बीजापुर दरबार से अपने दूत बाबाजी नाईक पुंडे को वापस बुला लिया।

आदिलशाही का विचार मन में आते ही शिवाजी की आँखों के सामने पन्हाला का किला खड़ा हो गया। सिंहगढ़, राजगढ़, रायगढ़, पुरन्धर जैसे किलों की तरह पन्हाला भी शिवाजी का विशेष प्रिय गढ़ था। उनके राज्य की दक्षिणी राजधानी के रूप में यह किला अत्यन्त उपयुक्त था। सिद्दी जौहर के आक्रमण के बाद हुई सन्धि में उन्हें यह किला बीजापुर को देना पड़ा था। तब से वे इस किले के लिए तरस रहे थे। अब बीजापुर दरबार में फैली गड़बड़ी से लाभ उठा कर पन्हाला पर अधिकार करने का उन्होंने निश्चय किया और अपने दो सरदारों—अण्णाजी दत्तो एवं कोंडाजी फर्जंद को उसे जीतने का कार्य सौंपा। उन्होंने डेढ़-दो महीने तक तैयारी की; गढ़ के रक्षकों में से कुछ लोगों को अपनी ओर मिला लिया; गढ़ के प्रबन्ध की पूरी जानकारी प्राप्त की और ६ मार्च १६७३ की अंधेरी रात में कोंडाजी फर्जंद केवल ६० सैनिकों को साथ लेकर रस्सियों की सहायता से किले के अन्दर पहुँच गया।

इस बार शत्रुओं को मूर्ख बना कर हराने की एक विचित्र विधि मराठों ने सोची थी। उन्होंने गढ़ पर पहुँचते ही रणसिंघे जोर-जोर से बजाये जिन्हें सुनकर सोये हुये शत्रुओं में बड़ी गड़बड़ी मच गयी। उनकी समझ में ही नहीं आया कि भूतों के समान ये शत्रु कहाँ से आ धमके हैं और उनकी संख्या कितनी है? अतः, जब वे लड़ने आये तो एक तरह से डरे हुए ही थे। थोड़ी ही देर में कोंडाजी ने मुस्लिम किलेदार को मार गिराया। यह देखकर शेष

अधिकारी या तो भाग खड़े हुए या कैदी बना लिए गये। जिस गढ़ को जीतने में सिद्दी जौहर के ४० हज़ार सैनिक भी सफल नहीं हो पाये थे, उसे मुट्ठी भर मराठों ने कुछ ही घण्टों में जीत लिया। इतने में गढ़ के नीचे ताक में बैठे हुए अण्णाजी दत्तो अपने सैनिक लेकर ऊपर पहुँच गये।

जब इस विजय की खबर शिवाजी को पहुँची तो वे फूले न समाये। वे तुरन्त पन्हाला पहुँचे और वहां एक महीना रहकर उन्होंने बीजापुर पर आक्रमण करने की योजनाएँ निश्चित कीं।

यह समाचार बीजापुर पहुँचते ही वहां बड़ी खलबली मच गयी। दरबार वाले समझ गये कि उनके आपसी झगड़ों के कारण शिवाजी जोर पकड़ रहा है। अतः उन्होंने विचार-विमर्श करके अपने शूर पठान सेनापति अब्दुलकरीम बहलोलखाँ को बहुत बड़ी सेना के साथ शिवाजी का दमन करने भेजा। जब शिवाजी को इसका पता चला तो उन्होंने अपने सेनापति प्रतापराव गुजर को बहलोल के मुकाबले के लिए भेजा। प्रतापराव के साथ आनन्दराव मकाजी, सिद्दी-हिलाल आदि अनेक सरदार थे। बहलोल आते-आते अधिकाधिक सेना एकत्रित करता आ रहा था। उसे जल्द से जल्द रोकना आवश्यक था। इसलिए प्रतापराव वायुवेग से गये और उन्होंने बीजापुर के पश्चिम में ३६ मील की दूरी पर उमराणी नामक गाँव के पास बहलोल को चारों ओर से घेर लिया। लगभग ९ घण्टे तक भीषण संग्राम होता रहा। शत्रुओं के सैकड़ों सैनिक मारे गये। हजारों कैद हुए और एक हाथी भी मराठों के हाथ लगा। मराठों ने बहलोल को इतनी बुरी तरह घेर लिया था कि पीने का पानी तक मिलना

दुष्कर हो गया। अतः बाधित होकर बहलोलखाँ ने अपनी हार स्वीकार कर ली और प्रतापराव से कहा कि "इस बार आप मुझे वापस जाने दीजिए। मैं फिर कभी मराठों के विरुद्ध हथियार नहीं उठाऊँगा।"

प्रतापराव को शरण आये शत्रु पर तरस आया और उसने वही भूल की जो पृथ्वीराज चौहान से लेकर आज तक सभी हिन्दू करते आये हैं। उसने बहलोल की बात का विश्वास करके उसे छोड़ दिया। जब शिवाजी को इस घटना की खबर मिली तो वे बड़े रुष्ट हुए। उन्होंने प्रतापराव से पूछा, "किस की आज्ञा से तुमने बहलोल को जाने दिया ? उसे कैद क्यों नहीं किया ? यदि वह कृतघ्न होकर फिर हमला बोल दे तो उसकी जिम्मेवारी किस पर होगी ?" तब प्रतापराव को बड़ा पछतावा हुआ और उसने अपनी फौज के साथ धारवाड़ हुबली पर धावा बोल दिया। वहां अंगरेज़ों की कोठी लूट कर उसने सात-आठ हज़ार होन का माल प्राप्त किया। वहां से वह कारवार जाना चाहता था। मगर इतने में मुज़फ़्फ़रखाँ उसका पीछा करता हुआ आया; इसलिए वह लौट आया। इधर बहलोलखाँ प्रतापराव द्वारा दिये गये प्राणदान को भुलाकर पन्हाला पर फिर से अधिकार करने के संकल्प से पड़ाव डाले प्रतीक्षा कर रहा था। इसलिए मराठों को फिर अपनी सेनाएँ पन्हाला के आसपास एकत्रित करना आवश्यक जान पड़ा।

हुबली की कोठी की क्षतिपूर्ति के लिए अंगरेजों ने शिवाजी से बातचीत चलायी। पर शिवाजी ने उनसे केवल इतना ही कहा कि "वर्षा के बाद मैं मुगलों के साथ प्रबल युद्ध करने वाला हूँ। अतः आपके लिए उचित होगा कि आप दक्षिण में

अपना कारोबार न रखें !" सन् १६६१ में मराठों ने राजापुर की अंगरेजी कोठी को लूटा था। उसकी क्षतिपूर्ति का मामला भी अभी तक नहीं निपटा था। इसका तात्पर्य इतना ही था कि शिवाजी अंगरेजों को कोई महत्त्व नहीं देते थे। उनसे गोला-बारूद या अन्य प्रकार की सहायता पाने की अपेक्षा वे ज़रूर रखते थे, परन्तु मुगलों के डर से अंगरेज शिवाजी से मित्रता नहीं रखते थे। अतः एक दूसरे के साथ दाँवपेंच करने में ही वे दोनों व्यस्त थे।

बहलोलखाँ पन्हाला के इलाके में घूम रहा था। उसकी गतिविधियों से शिवाजी को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने प्रताप-राव को फटकारते हुए फिर एक पत्र लिखा, "यह बहलोल बार-बार आकर सताता है। तुम सेना लेकर उस पर टूट पड़ो और उसे समाप्त कर दो। जब तक तुम बहलोल का ठीक प्रबन्ध नहीं करते, तब तक अपना मुँह हमें न दिखाना।"

इस पत्र ने आग में तेल का काम किया। रात दिन प्रतापराव के मस्तिष्क में कृतघ्न बहलोल से बदला लेने के ही विचार उठने लगे। प्रतिशोध की भावना ने उसे पागल ही बना दिया।

उन दिनों प्रतापराव अपनी सेना के साथ कोल्हापुर ज़िले के गढ़हिंग्लाज परगने में था। एक दिन किसी काम से वह अपने छः सैनिकों के साथ अपनी छावनी से बहुत दूर चला गया। वहां उसे पता चला कि बहलोलखाँ अपनी सेना लेकर बेलगाँव की तरफ से आ रहा है। यह खबर मिलते ही प्रतापराव के दिल की आग फिर सुलग उठी। उसके मन में यह विचार भी नहीं आया कि इतनी बड़ी सेना का मुकाबला

छः सात व्यक्ति कभी नहीं कर सकेंगे। वह वहीं से निकल पड़ा और नेसरी की घाटी में बहलोल की सेना पर टूट पड़ा। मगर उसका परिणाम विनाश के सिवाय हो ही क्या सकता था? २४ फरवरी १६७४ को कुछ ही क्षणों में सातों वीर बलिदान हो गए।

प्रतापराव की मृत्यु से शिवाजी को बड़ा दुःख हुआ। वे पछताये भी कि उनके कठोर शब्दों के कारण ही उनके प्रधान सेनापति को आत्मघात करने पर उतारू होना पड़ा।

प्रतापराव के साथ और एक शूर सरदार था—आनन्दराव। उसने प्रतापराव की मृत्यु से हिम्मत नहीं हारी। वह आगे बढ़ा और उसने बहलोल का प्रबल मुकाबला किया। इतने में बहलोल की सहायता में दिलेरखाँ भी आ गया। इसलिए आनन्दराव बहलोल की जागीर में घुस गया और उसने संपगाँव की पैंठ पर धावा बोल दिया। वहां उसे डेढ़ लाख होन की लूट मिली। उसने बहलोलखाँ के पेंच वग़ैरह दूसरे गाँव भी लूटे। वहां से आनन्दराव को इतनी सम्पत्ति मिल गयी कि उसे ढोने के लिए तीन हज़ार बैलों का उपयोग करना पड़ा था।

जागीर लुटने की खबर मिलते ही बहलोलखाँ आपे से बाहर हो गया और वह ख़िज्रखाँ को साथ लेकर आनन्दराव पर टूट पड़ा। मगर मराठे भी अपने सेनापति की मृत्यु से पागल हो उठे थे। उन्होंने सैकड़ों शत्रु-सैनिकों को मृत्यु के घाट उतारा। उनमें ख़िज्रखाँ का एक भाई भी था। तब बहलोल और ख़िज्रखाँ भाग गये। आनन्दराव की यह विजय बड़ी शानदार रही। उसे काफ़ी सम्पत्ति, पांचसौ घोड़े और दो हाथी भी मिले।

इससे पहले मुगल सरदार दिलेरखाँ ने कोंकण में जाने का प्रयत्न किया था। तब शिवाजी ने उसे बुरी तरह हराया था। उस लड़ाई में एक हज़ार पठान मराठों के हाथों मारे गए थे। उसके दो मास बाद मुगल सरदार बहादुरखाँ ने भी कोंकण में उतरने का प्रयत्न किया था; पर शिवाजी की सेनाओं ने कोंकण के सारे रास्ते इस तरह रोक लिए थे कि उसे हाथ मलते हुए वापस लौट जाना पड़ा। इस प्रकार दक्षिण में शिवाजी के आगे उनके सारे शत्रु हतप्रभ होते जा रहे थे। इधर ख़ैबर में अफ़गानों का विद्रोह इतना प्रबल हो उठा था कि औरंगज़ेब को स्वयं वहां जाना पड़ा और फिर उसने अपनी सहायता के लिए दिलेरखाँ को भी बुला लिया। दक्षिण में अकेला बहादुरखाँ रह गया जो रिश्वत लेकर किसी का भी गुलाम बन सकता था। मराठों ने उसे पर्याप्त धन देकर खरीद लिया। अतः दक्षिण में शिवाजी के साथ मुगलों का युद्ध लगभग बन्द ही हो गया। उनसे लड़ते-लड़ते सभी थक भी गये थे।

इन्हीं दिनों मराठा जलसेना की भी एक महत्त्वपूर्ण विजय हुई। मार्च १६७४ में शिवाजी के एक जल-सेनापति सरदार दौलतखाँ ने सिद्दी सम्बुल की जलसेना से सातवली की खाड़ी में खुलकर लड़ाई की, जिसमें सिद्दी के सौ सैनिक काम आये। स्वयं सम्बुल भी घायल होकर हरेश्वर भाग गया। इस विजय से शिवाजी को विशेष प्रसन्नता हुई।

अब शिवाजी ने अंगरेजों को यह धमकी दी कि यदि आप सिद्दी से मैत्री रखेंगे तो हम आपसे किसी प्रकार की सन्धि नहीं करेंगे। उन्होंने अंगरेजों को भी लिखा कि "अगर आप सिद्दी को बम्बई के बन्दरगाह में आश्रय देंगे तो मैं आपसे

भी युद्ध करूँगा। मुगलों के जहाजों को जला दूंगा और बम्बई जीतने में डचों को दस हज़ार सेना से सहायता करूंगा।"

प्रतापराव गुजर की मृत्यु से रिक्त मराठों के सेनापति पद पर ८ अप्रैल १६७४ को शिवाजी ने आनन्दराव मकाजी मोहिते को नियुक्त कर दिया। उससे पहले उनकी वीरता के कारण शिवाजी ने उन्हें 'हंबीरराव' की उपाधि से विभूषित किया था। आगे चलकर हंबीरराव मोहिते ने बहुत बड़े-बड़े पराक्रम करके अपने को सेनापति पद के योग्य सिद्ध किया।

राज्याभिषेक

जैसे-जैसे मराठों का स्वराज्य विस्तृत होता गया वैसे-वैसे शिवाजी उसकी विधिवत् स्थापना करने की आवश्यकता अनुभव करने लगे। उन दिनों मराठा सरदारों को बादशाह की ओर से 'राजा' की उपाधि मिलती थी। पर वे केवल नामधारी राजा होते थे। औरंगज़ेब ने मुअज़्ज़म की सिफारिश पर शिवाजी को भी 'राजा' की उपाधि प्रदान की थी। उनका पद या अधिकार साधारण सरदार, जागीरदार, ज़मींदार से अधिक नहीं होता था। वे अपना राज्याभिषेक नहीं कर सकते थे और न आज तक किसी ने वैसा प्रयत्न ही किया था। परन्तु शिवाजी की स्थिति भिन्न थी। उन्होंने अपने पराक्रम से महाराष्ट्र एवं कर्नाटक के बहुत बड़े भाग पर अपना राज्य स्थापित कर लिया था। आदिलशाह और कुतुबशाह उन्हें खंडनी देने लगे थे। मुगलों ने भी व्यवहारतः उनके सामने हथियार डाल दिये थे और पुर्तगाली एवं अंगरेज आदि विदेशी राजदूत उनके दरबार में आने लगे थे। एक तरह से वे देश की बड़ी राजसत्ताओं के समकक्ष हो गये थे।

परन्तु यह स्थिति व्यवहार में ही थी। शिवाजी के शत्रु उन्हें गुण्डा, लुटेरा, डाकू और विद्रोही ही समझते थे। वे उनकी शक्ति के आगे झुक जाते थे, पर उनकी श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं करते थे। स्वयं उनकी प्रजा में भी अपने इस नये राजा के प्रति विश्वास का निर्माण नहीं हुआ था। उनकी दृष्टि से शिवाजी की आज्ञाओं की अपेक्षा मुगलों या आदिल-शाह के आदेशों का ही महत्त्व अधिक था। वे समझते थे कि मुस्लिम शासक हमेशा बने रहने वाले हैं। शिवाजी के विषय में उन्हें इस प्रकार का विश्वास नहीं था। इसका कारण यह था कि जिनके देखते-देखते शिवाजी साधारण जागीरदार से राजा बन बैठे थे, वे शिवाजी से जलने लगे थे और उन्हें नीचा ही दिखाना चाहते थे।

देवगिरि के छत्र-चामरधारी सिंहासनाधीश्वर यादवनरेशों के विनाश के पश्चात् (१३१८ई०) लगभग साढ़े तीनसौ वर्ष तक मुस्लिम शासकों ने महाराष्ट्र को बुरी तरह दबा रखा था। इससे मराठों के बारे में यह धारणा बन गयी थी कि वे क्षुद्र, दुर्बल, जन्मजात दास एवं नीच हैं। उनकी भाषा, धर्म, सम्पत्ति, संस्कृति, माँ-बहनें, बल्कि उनके शरीर एवं प्राण भी कौड़ी कीमत के बन गये थे। ये मराठे जब सार्वभौम शासक बने तो किसी को इस बात पर विश्वास नहीं होता था।

इससे शिवाजी के राजकाज में बड़ी बाधाएँ पड़ती थीं। प्रजा से कर वसूल करना, कानून बनाना, अन्य राज्यों के साथ बराबरी के सम्बन्ध रखना आदि कार्यों में कठिनाई होती थी। उन्होंने अपनी अलग राजमुद्रा तो पहले से ही चलायी हुई थी। वे अपने को 'छत्रपति' भी कहलाने लगे थे और कुछ मंत्रियों की भी नियुक्ति उन्होंने कर दी थी। पर लोग उन्हें

साधारण जागीरदार ही मानते थे और उनकी आज्ञाओं को महत्त्व नहीं देते थे। अतः वे यह प्रकट कर देना चाहते थे कि अब महाराष्ट्र पर दिल्ली के मुगलों या बीजापुर के आदिलशाह की सत्ता नहीं रही है, वह महाराष्ट्र के ही निवासी एक हिन्दू के हाथ में आ चुकी है। इसके लिए एक ही उपाय था—राज्याभिषेक द्वारा एक नये राजवंश की स्थापना करना। शिवाजी ने उसे ही अपनाने का निश्चय किया।

राज्याभिषेक करवाना भी उस समय कोई सुगम बात नहीं थी। उसमें सबसे बड़ा अड़ंगा हिन्दू धर्म के महान् कलंक, जात-पांत ने ही लगाया। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार क्षत्रिय ही अपना अभिषेक करके राजा बन सकता था। भोंसले वंश के लोग न क्षत्रिय माने जाते थे और न द्विज; उनको किसान ही समझा जाता था। अतः चातुर्वर्ण्य की दृष्टि से वे शूद्र ठहरते थे; और शूद्र को राज्याभिषेक का अधिकार था ही नहीं। मुस्लिम शासकों के पाँव चाटने वाले ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों ने शिवाजी को शूद्र ठहरा कर राज्याभिषेक के अयोग्य समझा। महाराष्ट्र में उनके राज्याभिषेक के लिए कोई विद्वान् ब्राह्मण तैयार नहीं हुआ।

परन्तु सौभाग्य से एक प्रकाण्ड पण्डित शीघ्र ही मिल गया। संयोग की बात, कि यह पण्डित महाराष्ट्रीय ही था। उसका वास्तविक नाम था विश्वेश्वर भट्ट; परन्तु वह गागाभट्ट के नाम से विशेष प्रसिद्ध था। उसके पूर्वज गोविन्दभट्ट सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पैठण छोड़कर काशी जा बसे थे। इस घराने के पुरुषों ने अपनी विद्वत्ता के बल पर काशी ही नहीं, सारे भारतवर्ष के विद्वानों में सम्मान प्राप्त किया था। गागाभट्ट ने विशेष रूप से अपने पूर्वजों की कीर्ति में

बहुत वृद्धि की थी। उन्होंने मीमांसा कुसुमाञ्जलि, भाट्ट-चिन्तामणि, राकागम आदि कई विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों की रचना की थी। राजस्थान में होने वाले राज्याभिषेक इस घराने के पण्डितों द्वारा ही कराए जाते थे। अतः शिवाजी ने अपने ब्राह्मण प्रतिनिधि गोविन्दभट्ट खेड़कर आदि को गागाभट्ट की सेवा में भेजकर राज्याभिषेक के लिए पधारने की प्रार्थना की। वे राज्याभिषेक कराने के लिए तुरन्त तैयार हो गये। अन्य कई ब्राह्मणों ने इस राज्याभिषेक का विरोध किया। अकबर के समय में काशी के एक पण्डित कृष्ण नृसिंह शेष ने 'शूद्राचार शिरोमणि' नाम का ग्रन्थ लिखकर यह प्रमाणित करने की चेष्टा की थी कि कलियुग में क्षत्रिय रहे ही नहीं हैं। इस ग्रन्थ का आधार लेकर ब्राह्मण लोग राज्याभिषेक का विरोध कर रहे थे। तब गागाभट्ट ने अपनी विद्वत्ता से ब्राह्मणों के मतों का खंडन किया और यह प्रमाणित किया कि शिवाजी पूरे क्षत्रिय हैं और उन्हें राज्याभिषेक का पूण अधिकार है। इस काम में शिवाजी के प्रधान सचिव बालाजी आवजी चिटनीस ने भी पर्याप्त सहायता पहुँचायी। वह स्वयं राजस्थान गया और उदयपुर के सीसोदिया राजवंश के साथ शिवाजी का सम्बन्ध स्थिर करने वाला प्रमाण ले आया। राज्याभिषेक विधि पर गागाभट्ट ने 'राज्याभिषेक प्रयोग' नामक एक ग्रन्थ भी लिखा है।

नये राज्य के लिए राजधानी की आवश्यकता थी, जहाँ अभिषेक किया जाता। अब तक शिवाजी की राजधानी राजगढ़ ही थी। पर अनेक वर्षों के अनुभव के आधार पर सबसे दृढ़ गढ़ रायगढ़ को ही राजधानी के लिए चुना गया। कुलाबा ज़िले में महाड़ शहर से १५ मील की दूरी पर यह

किला है। ऊँचे पर्वतों पर स्थित होने के कारण रायगढ़ महाराष्ट्र के अन्य सभी किलों से अधिक दुर्गम है। उसके बीच में २० से ४० फीट ऊँची दीवारें खड़ी करके शिवाजी ने उसे और भी दुर्गम बना दिया। इसी गढ़ पर शिवाजी ने राजापुर के अंगरेजों को कैद रखा था। अंगरेज़ इस किले को 'जिब्राल्टर ऑव दि ईस्ट' कहते थे। गढ़ के ऊपर काफी लम्बा चौड़ा मैदान है। वहां राजधानी के लिए आवश्यक सभी वस्तुएँ तैयार कर ली गयी थीं—जैसे पानी के तालाब, अनाज और गोलाबारूद के कोठार, तीन सौ से ज़्यादा इमारतें, छोटे-बड़े महल, दरबार का सभागृह, जगदीश्वर का मन्दिर, बाज़ार, अश्वशालाएँ, हाथीशालाएँ, गौशालाएँ आदि।

तैयारियों के कारण रायगढ़ पर लगभग एक महीने तक बड़ी चहल-पहल रही। अभिषेक के लिए शक संवत् १५९६ के ज्येष्ठ महीने में शुक्लपक्ष की त्रयोदशी, ६ जून १६७४ ई० का मुहूर्त निश्चित किया गया। स्वकीय, परकीय, धार्मिक, राजनैतिक आदि सभी व्यक्तियों को निमंत्रण भेजे गये। बत्तीस मन सोने का सिंहासन बनाया गया। भारत के सभी समुद्रों, गंगा और बड़ी-बड़ी नदियों एवं तीर्थ-क्षेत्रों के जल लाये गये। पण्डित, कलाकार, गायक-वादक आदि एकत्रित होने लगे।

भोंसले कुल की कुलस्वामिनी थी माता भवानी! उनके दर्शन के लिए शिवाजी महाराज सदलबल प्रतापगढ़ गये। महाराज ने यथाविधि उनकी पूजा की और सवा मन सोने का छत्र उनको समर्पित किया। वहां उन्होंने कुछ दिन बिताये और २१ मई को वे फिर रायगढ़ पहुँचे। उससे पहले ही

अंगरेजों का दूत हेनरी ऑक्सिडेन रायगढ़ के नीचे पाचाड़ गाँव में आकर ठहरा था, जहां शिवाजी की वृद्धा माता जीजाबाई रहती थीं।

राज्याभिषेक की धार्मिक विधियां २९ मई से आरम्भ हुईं। सबसे पहली विधि यज्ञोपवीत की थी। शिवाजी का उपनयन नहीं हुआ था। अतः सबसे पहले यज्ञोपवीत संस्कार किया गया। उसके बाद विवाह की बात आयी। अब तक शिवाजी के आठ विवाह हुए थे, जिनमें से चार रानियां जीवित थीं। (कुछ इतिहासज्ञों के कथनानुसार शिवाजी की दो उपपत्नियां भी थीं।) परन्तु ये विवाह रूढि पौराणिक पद्धति से हुए थे। अतः उन्हीं रानियों के साथ उनके विवाह वैदिक पद्धति से फिर कराये गये। संभाजी की माँ सईबाई इस समय जीवित नहीं थीं; इसलिए राजाराम की मां सायेराबाई को पटरानी बनाया गया।

विवाह के बाद तुलादान की विधि सम्पन्न हुई। सबसे पहले सुवर्ण तुला हुई। इसमें कुल सत्रह हज़ार होन लगे, जिसका अर्थ था कि शिवाजी का वज़न पूरे दो मन (१६० पौंड) था। उसके बाद चांदी, तांबा, कपूर, शक्कर, मक्खन, फल आदि तरह-तरह के पदार्थों से तौल की गयी और वे सारे पदार्थ ब्राह्मणों एवं गरीबों को बांट दिये गये।

ज्येष्ठ सुदी १२, शुक्रवार की रात का अन्तिम और सुदी १३, शनिवार के दिन का प्रथम भाग प्रातः पांच बजे राज्याभिषेक के लिए नियत मुहूर्त था। चारों दिशाओं से सहस्रों लोग वह विधि देखने के लिए एकत्रित हुए थे। इस राज्याभिषेक का अर्थ था—अब महाराष्ट्र मुस्लिमों की गुलामी से

मुक्त हुआ है और शेष भारत भी शीघ्र ही उस दिशा में आगे बढ़ने वाला है।

मंगल वाद्यों की मधुर ध्वनियों एवं ब्राह्मणों द्वारा किये जाने वाले वेदमंत्रों के उद्घोष से रायगढ़ का वायुमण्डल गूंज उठा। सहस्रों दीपों से सारा गढ़ जगमगा उठा—मानो परतंत्रता का अन्धकार नष्ट हो रहा हो! सोने के रत्नजटित सिंहासन पर राजा-रानी को बैठाना, दोनों पर मूल्यवान् मोतियों से जड़ा हुआ छत्र रखना और आठों दिशाओं से लाये गये गंगाजलों से सिंहासन के आठ खम्भों के पास खड़े अष्ट प्रधानों तथा पवित्र ब्राह्मणों द्वारा स्वर्णपात्रों से अभिषेक—यही इस राज्याभिषेक की प्रधान धार्मिक विधि थी। उसके अनुसार राजा के आठों मंत्री आठ दिशाओं में खड़े हो गए और वेदों के घोष के साथ उन्होंने अपने प्रिय महाराज पर अभिषेक किया। तब उपस्थित व्यक्तियों ने घोष किया—'क्षत्रियकुलावतंस श्री राजा शिव छत्रपति महाराज की जय हो!'

यह दृश्य देखकर राजमाता जीजाबाई की आँखें आनन्द एवं कृतार्थता से परिपूर्ण हो उठीं। यही स्वर्णदिन देखने के लिए ही तो बचपन से उन्होंने अथक परिश्रम किये थे। संभवत: अपने जीवन की इस सम्पूर्ण सफलता के बाद उनका मन एवं शरीर निढाल हो गया और राज्यारोहण समारोह के केवल १२ दिन के पश्चात् वे सुखी एवं कृतकृत्य मन से स्वर्गलोक सिधारीं।

इस उत्सव के उपलक्ष्य में सारे स्वराज्य में तोपें दागी गयीं। ब्राह्मणों को दक्षिणाएँ दी गयीं। गागाभट्ट को नकद

एक लाख रुपया और कीमती वस्त्र दिये गये। अन्य पुरोहितों को भी उनकी योग्यता के अनुसार दक्षिणा दी गयी।

धार्मिक विधि के पश्चात् जनता को दर्शन देने के लिए शिवाजी महाराज प्रातः सात बजे के लगभग दरबार महल में राजसिंहासन पर आकर विराजमान हुए। तब राजपुरोहित गागाभट्ट ने शिवाजी के सिर पर छत्र रखा और सभी पण्डितों ने आगे बढ़कर महाराज को शुभाशीर्वाद दिये। फिर पेशवा मोरोपन्त आगे बढ़े और उन्होंने शिवाजी के सिर पर आठ हज़ार होनों की वर्षा करके उन्हें स्वर्णस्नान कराया। तब अन्य मंत्री, सरदार, सूबेदार, राजदूत, अतिथि आदि ने महाराज को प्रणाम करके भेंट देना आरम्भ किया। इस समय युवराज संभाजी सिंहासन की सीढ़ी पर बैठे थे और पेशवा मोरोपन्त तथा राजपुरोहित गागाभट्ट पास ही ऊँचे आसनों पर विराजमान थे। जो कोई भेंट अर्पण करता उसे उसकी योग्यता के अनुसार सम्मान के वस्त्र दिये जाते थे। अंगरेज़ों का राजदूत हेनरी ऑक्जिडेन अपने सहकारी नारायण शेणवी को साथ लेकर मराठों के नये छत्रपति की सेवा में उपस्थित हुआ। वह महाराज के लिए सोलह सौ रुपयों की भेंट लाया था। उसमें एक मूल्यवान् अंगूठी, रत्नजटित शिरोभूषण, तीन मोती, एक विलायती कुर्सी आदि वस्तुएँ थीं। युवराज एवं अन्य मंत्रियों के लिए भी वह ऐसी ही मूल्यवान् वस्तुएँ लाया था। महाराज ने उसे भी बहुमूल्य वस्त्र दिये।

ऑक्जिडेन ने राज्याभिषेक के समारोह का अच्छा वर्णन लिखा है :—"उस समय सिंहासन के दाहिनी ओर दो स्वर्ण-मत्स्यों के सिर और बायीं तरफ घोड़ों की पूँछें भालों पर लटकी हुई थीं। ये समुद्र-प्रभुत्व एवं सेना की सामर्थ्य के

प्रतीक थे। न्याय के प्रतीक के रूप में एक भाले की नोंक पर एक सोने का तराज़ू लटक रहा था।" रायगढ़ पर चढ़ने का मार्ग अत्यन्त कठिन एवं सँकरा था। फिर भी दो हाथी और कई घोड़े ऊपर चढ़ाये गये थे। उन्हें देखकर हेनरी ऑक्ज़िडेन को बड़ा ही आश्चर्य हुआ।

इस समारोह पर लगभग पांच करोड़ होन खर्च हुआ। धार्मिक विधियां एवं राजसिंहासन का ठाठ-बाट देखकर दर्शक बहुत ही प्रभावित हुए। अब लोगों ने मान लिया कि शिवाजी सचमुच बादशाहों की बराबरी का राजा है और देव-ब्राह्मणों द्वारा स्वीकृत उसका राज्य चिरकाल रहने वाला है।

दरबार की समाप्ति के बाद शिवाजी महाराज हाथी पर बैठकर शोभायात्रा के साथ देवदर्शन के लिए गये। उसके बाद भी कई दिन तक यह समारोह चलता रहा। वह और भी चलता रहता परन्तु राजमाता जीजाबाई की मृत्यु के कारण राजधानी में उदासी छा गयी। युवराज संभाजी का मौंजीबंधन भी इसी कारण उस समय नहीं हो सका, जो फिर ४ फरवरी १६७५ को संपन्न हुआ।

राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में शिवाजी ने एक नया संवत् चलाया जिसका नाम 'राज्याभिषेक शक' था। स्वतंत्र काल-गणना सार्वभौमत्व का सूचन करने वाली होती है और शककर्ता राजा शताब्दियों के बाद ही कोई पैदा होता है। यह शक १०४ बरस तक चला। सन् १७१७ ई० में जब दूसरा शाहू गद्दी पर बैठा तब सखाराम बापू बोकील एवं नाना फड़नवीस को यह शक असुविधाजनक प्रतीत हुआ और उन्होंने उसका प्रचलन बन्द करवा दिया।

अपना अलग सिक्का चलाना भी उतना ही महत्त्व रखता

था। अतः इस अवसर पर शिवाजी ने अपने नाम का ताँबे का पैसा और सोने का होन भी चलाया। इन्हें शिवराई सिक्के कहा जाता है। इन सिक्कों पर एक ओर 'श्री राजा शिव' और दूसरी ओर 'छत्रपति' शब्द खुदे हुए थे। राज्याभिषेक से पहले भी शिवाजी के नाम के सिक्के चलते थे। परन्तु उन पर छत्रपतित्व का चिह्न अंकित नहीं होता था। राज्याभिषेक के बाद उन्होंने अपने पत्रों पर अपने नाम के साथ 'क्षत्रियकुलावतंस श्री राजा शिव छत्रपति' की उपाधि लगाना भी शुरु किया।

शिवाजी के समय तक प्राचीन हिन्दू संस्कृति लुप्तप्रायः हो चुकी थी। उसका स्थान विलासप्रधान मुस्लिम संस्कृति ने ले लिया था। इस विदेशी संस्कृति के साथ अरबी, फारसी, उर्दू भाषाओं ने भी यहां की संस्कृत-प्राकृत भाषाओं पर आक्रमण करके अपना अड्डा जमा रखा था। यहां तक कि लोगों को संस्कृत के स्थान पर अरबी-फारसी के शब्द ही अधिक परिचित एवं प्रिय लगने लगे थे। शिवाजी के लिए यह स्थिति असह्य थी। उन्हें इसमें हिन्दू संस्कृति का अपमान दिखाई देता था। अतः उन्होंने रघुनाथ पण्डित हणमंते से 'राजव्यवहार कोष' नाम का एक शब्दकोष* तैयार करवाया। इसी तरह पंचांग में सुधार करने की दृष्टि से शिवाजी ने कृष्ण ज्योतिषी से 'करण कौस्तुभ' नाम का नया फल-ग्रन्थ भी तैयार करवाया। इस प्रकार मृतप्रायः हिन्दू संस्कृति का पुनरुज्जीवन

---

*नमूने के तौर पर इस शब्दकोष की ये पंक्तियाँ देखिये—

शाहजादा राजपुत्रः प्रधानः पेशवा तथा ॥ अमात्यः स्यात् मुजुमदारः सेनाध्यक्षो हुकूमतः युक्त्यभिज्ञो दबीरः स्यात् सुर्नीसः सचिवस्तथा ॥३॥

(उपरोक्त रेखांकित शब्द नये संस्कृत शब्द हैं।)

करने में शिवाजी ने बहुत बड़ा हाथ बंटाया। उन्हीं के प्रयत्नों से तुच्छ मराठों में इतना आत्मविश्वास पैदा हुआ कि भविष्य में दिल्ली के मुगल सिंहासन पर भी वे अधिकार कर सके।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है बालक शिवाजी को जब शाहजी ने बंगलूर से दादाजी कोंडदेव के साथ पहले-पहल पूना भेजा तो उनके साथ पेशवा, मजमूदार आदि अधिकारियों को भी भेजा था। जैसे-जैसे राज्य का विस्तार बढ़ता गया इन अधिकारियों की संख्या एवं अधिकारों में भी वृद्धि होती गयी। अन्त में शिवाजी ने अपने तथा औरों के अनुभवों से आठ मंत्रियों की प्रणाली को अपनाया जो उन दिनों सामान्य रूप से प्रचलित थी। इस प्रणाली को "अष्टप्रधान पद्धति" कहा जाता है। राज्याभिषेक के अवसर पर शिवाजी ने इन आठ मंत्रियों के कार्य निश्चित कर दिये और उनके पुराने फ़ारसी नामों के स्थान पर नये संस्कृत नाम चलाये। ये नाम संभवत: "शुक्रनीति" से लिए गये थे। शुक्रनीति में निम्नलिखित उल्लेख पाया जाता है—

अष्टप्रकृतिभिर्युक्तो नृपः कैश्चित् स्मृतः सदा।
सुमन्त्रः पण्डितो मन्त्री, प्रधानः सचिवस्तथा॥
अमात्यः प्राड्विवाकश्च तथा प्रतिनिधिः स्मृतः।
राजा भृतिसमास्त्वष्टौ राज्ञः प्रकृतयः सदा॥

यह भी निश्चित किया गया कि कौन-सा मंत्री कहां बैठेगा। इस नियम के अनुसार मंत्रियों के निम्नलिखित स्थान निश्चित किये गये थे :—

सिंहासन के दाहिनी ओर	सिंहासन के बायीं ओर
मुख्यप्रधान (पेशवा*)	सेनापति (सरनोबत)
अमात्य (मजमूआदार)	सुमन्त (दुबीर)
सचिव (सुरनीस)	न्यायाधीश (नया पद)
मंत्री (वाकनीस)	न्यायशास्त्री (नया पद)

इन मंत्रियों के कार्य इस प्रकार होते थे :—(१) मुख्य-प्रधान प्रधान-मंत्री होता था; (२) अमात्य जमा-खर्च का लेखा रखता था; (३) सचिव पत्रव्यवहार का कार्य संभालता था; (४) मंत्री राजा की दिन भर की गतिविधि एवं राज-दरबार की घटनाओं का दैनिक ब्यौरा रखता था; (५) सेनापति राज्य की समस्त सेनाओं का संचालक होता था; (६) सुमन्त विदेश मंत्री होने के साथ ही गुप्तचर (जासूसी) विभाग का भी प्रधान होता था; (७) न्यायाधीश राज्य के सारे न्यायाधीशों का प्रधान होता था; (८) न्याय शास्त्री अकेला ही मुसलमानी राज्य के सद्र एवं मुहतसिब दोनों अधिकारियों का काम संभालता था। वह धार्मिक मामलों और जात-पाँत के झगड़ों को निबटाने, अधार्मिकों एवं भ्रष्टाचारियों को दण्ड देने तथा राजकीय दान-विभाग से विद्वान् ब्राह्मणों को दक्षिणा देने का काम करता था।

*फारसी शब्दों के मूल अर्थ:—पेशवा=नेता; अग्रगण्य। मजमूआदार=जमा करने वाला; संग्रहकर्ता। सुरनीस=शुरु नवीस; वह अधिकारी जो सरकारी काग़ज़ात पर 'शुरु', 'शुद' (हुआ) एवं बार (अंकित) ये तीन शब्द लिखता था। वाक़नीस=वाक़यानवीस; घटनाएँ लिखने वाला। सरनोबत=सरे नौबत; वह अधिकारी जिसे स्वतंत्र नौबत (नगाड़ा एवं शहनाई) मिली हुई हो। दबीर=लिखने वाला; निजी सचिव।

सम्मान का बीड़ा एवं नारियल देते समय पहले न्यायशास्त्री को और फिर प्रधान, अमात्य, सचिव, मंत्री, सुमन्त तथा न्यायाधीश को सम्मानित किया जाता था। सबसे अन्त में सेनापति की बारी आती थी। इसका अर्थ यह था कि सेनापति दंडशक्ति का प्रतीक था। इस दंडशक्ति को अन्य सभी शक्तियों के अधिकार में रहना चाहिए, ऐसा संकेत इस पद्धति से मिलता था।

राज्याभिषेक के समय शिवाजी के मंत्रिमण्डल में निम्नलिखित व्यक्ति थे :—

मुख्यप्रधान—मोरोपंत पिंगले
अमात्य—रामचन्द्र नीलकंठ
सचिव—अण्णाजी दत्तो
मंत्री—दत्ताजी त्र्यंबक
सेनापति—हंबीरराव मोहिते
सुमन्त—रामचन्द्र त्र्यंबक
न्यायाधीश—रावजी निराजी
न्यायशास्त्री – रघुनाथ पंडितराव

राज्याभिषेक का निश्चय हो जाने के तुरन्त बाद १९ मार्च के लगभग शिवाजी की एक रानी की मृत्यु हुई थी और राज्याभिषेक के बाद तुरन्त माता जीजाबाई का भी देहान्त हो गया। इस प्रकार की अशुभ घटनाओं के कारण जनसाधारण में चिन्ता का वायुमंडल फैल गया। निश्चलपुरी नाम के एक लोकाचार प्रवीण, मंत्रतंत्रज्ञ पंडित ने कहा कि गागाभट्ट द्वारा कराये गये राज्याभिषेक समारोह के विधि-विधानों में कुछ गलतियां हो जाने से ये अशुभ बातें हुई हैं। उन्होंने निश्चलपुरी बाबा के हाथों पुराणोक्त पद्धति से

२४ सितम्बर १६७४ को फिर एक बार राज्याभिषेक करवाया। सिंहासन, उसके सिंह, महाद्वार आदि पर एवं अन्य देवी-देवताओं के लिए बलियाँ चढ़ायी गयीं। इससे साधारण जनता के मन में छायी हुई भीति दूर हो गयी।

शिवाजी के राज्याभिषेक से सारी हिन्दू प्रजा को निस्सीम प्रसन्नता हुई। बीजापुर और गोलकुंडा के सुलतानों को भी आनन्द ही हुआ, क्योंकि शिवाजी के कारण औरंगज़ेब के आक्रमणों से वे बचे थे। परन्तु इससे औरंगज़ेब को बहुत दुःख हुआ।

राज्याभिषेक की खबरें सुनकर औरंगज़ेब की क्या दशा हुई। इसका वर्णन कई इतिहास-लेखकों ने किया है। एक इतिहासकार लिखता है, "बादशाह बहुत दिलगीर हो गये। तीन दिन तक वे बाहर नहीं निकले। वे बहुत ही बेचैन हुए। उन्हें लगा कि खुदा ने मुसलमानों से उनकी बादशाही छीन कर शिवाजी को दे दी है। शिवाजी के स्मरण ने उन्हें पागल बना दिया। तब बादशाह के दूधभाई बहादुरखाँ कोकलताश ने जाकर उन्हें तसल्ली दी कि आप चिन्ता न करें। मैं जाकर शिवाजी को नष्ट-भ्रष्ट किये डालता हूँ और यह कह कर बादशाह को तख्त पर ला बैठाया। तब बादशाह ने बहादुरखाँ की तारीफ़ करके उसे कीमती वस्त्र अलंकार आदि दिये। सत्तर हज़ार घुड़सवार उसके साथ कर दिये और उसे शिवाजी के दमन के लिए भेजा।"

नये आक्रमण, नयी जीतें

राज्याभिषेक समारोह पर लगभग पाँच करोड़ होन (अर्थात् १७ करोड़ रुपया) खर्च हुआ था। केवल ब्राह्मणों की दक्षिणा का व्यय ही डेढ़ करोड़ होन था। उसके अतिरिक्त सोने के सिंहासन, छत्र आदि बनवाने में भी बहुत अधिक व्यय हुआ था। उसकी पूर्ति के लिए शिवाजी ने देशमुख, कुलकर्णी, देशपांडे, पटेल-पटवारी आदि वतनदारों पर (जिन्हें वंश-परंपरागत कामों के लिए ज़मीन दी गई हो, उन्हें वतनदार कहते थे) और अन्य धनवानों पर राज्याभिषेक कर लगाया। पुणें के प्रदेश की मुगलों के हमलों से बहुत हानि हुई थी, इसलिए उसे इस कर से मुक्त रखा था। जनसाधारण पर यह कर नहीं लगाया गया था, क्योंकि इस विधि से अधिक पैसा प्राप्त होने की संभावना नहीं थी। अतः मुगलों के सम्पन्न शहरों को लूटने का कार्यक्रम आयोजित किया गया। परन्तु उसमें केवल पैसा प्राप्त करने की ही दृष्टि नहीं थी; शत्रुओं को आतंकित करने का भी विचार उसके मूल में था।

शिवाजी को राज्याभिषेक समारोह में व्यस्त देखकर मुगल सेनापति बहादुरखाँ शिवाजी के प्रदेश पर आक्रमण करने की सोच रहा था। इसलिए वर्षाऋतु की परवाह किये बिना ही उस पर धावा बोल देने की योजना शिवाजी ने बनायी। इस बार उन्होंने एक नये ही उपाय का प्रयोग किया। उन्होंने अपनी सेना के दो हिस्से किये। उनमें से एक छोटा, २००० घुड़सवारों का हिस्सा पूना से ५० मील पूर्व में स्थित दौंड-पेड़गाँव की ओर भेजा, जहां बहादुरखाँ ने अपना स्थायी पड़ाव डाल रखा था और अपने नाम पर बहादुरगढ़ नाम का मज़बूत किला भी बनवाया था। इस टुकड़ी ने पड़ाव पर आक्रमण करने का ढोंग रचा तो उसके चक्कर में पड़ कर उसका पीछा करता हुआ बहादुरखाँ पेड़गाँव से कोई ५० मील की दूरी तक निकल गया। उसी समय अवसर की ताक में बैठा हुआ ९००० सवारों का दूसरा दल पेड़गाँव पहुँच कर उस अरक्षित पड़ाव पर टूट पड़ा। उसने बहादुरखाँ का एक करोड़ का खज़ाना तथा दूसरा कीमती माल लूट लिया, जिसमें बहादुरखाँ द्वारा औरंगज़ेब की भेंट करने के लिए जमा किये हुए अच्छी नस्ल के भारी मूल्य वाले दोसौ घोड़े भी थे। लूट के बाद पड़ाव में आग लगा दी गयी, जिससे बहादुरखाँ के असफल लौट आने पर वहां उसे राख के ढेर ही दिखाई दिये।

एक करोड़ रुपयों की लूट वैसे काफी बड़ी थी; पर शिवाजी को और भी अधिक धन की आवश्यकता थी। अतः उन्होंने सूरत के सूबेदार से मांग की कि पिछले तीन साल की चौथ के नौ लाख रुपये वह तुरन्त भेज दे, अन्यथा फिर से

सूरत लूटा जायगा। मक्का जाने वाले मुसलमानों के जहाज़ों को पकड़ने का भी विचार शिवाजी ने किया।

मराठों की सेनाएँ औरंगाबाद-बुरहानपुर की ओर भी गयीं। वहां उन्होंने धरणगाँव आदि धनवान् शहरों को लूट कर काफी सम्पत्ति जमा की। धरणगाँव में उन्होंने अंगरेजों की एक कोठी को भी खूब अच्छी तरह लूटा। इस इलाके पर मुगलों का फौजदार कुतुबुद्दीनखाँ खेशगी नामक व्यक्ति था। उसने मराठों को रोकने की चेष्टा की, पर वह हार कर औरंगाबाद भाग गया। अगले साल मुगल फौजों ने कोंकण पहुँच कर कल्याण शहर पर अधिकार कर लिया और उसका कुछ हिस्सा जला भी दिया। मगर उनके लौटते ही मराठों ने फिर कल्याण पर कब्ज़ा कर लिया। इससे बहादुरखाँ बहुत तंग आ गया और शिवाजी से संधि करने के लिए उत्सुक हो उठा।

इसी समय शिवाजी ने बीजापुर के प्रदेश में भी आक्रमण शुरु कर दिए थे। उन्होंने कोल्हापुर, रायबाग आदि नगर जीत लिए और गोवा की सीमा पर स्थित फोंडा नामक मजबूत किले पर घेरा डाला। वे चाहते थे कि किसी तरह मुगलों के आक्रमण कुछ दिनों के लिए रुक जायँ। उधर बहादुरखाँ भी मराठों के छापामार दस्तों से तंग आ गया था। इसलिए शिवाजी ने उसके साथ सन्धि करने का बहाना बनाया और तीन-चार महीने तक मुगलों को सन्धि की झूठी आशाओं के चक्कर में ही फंसाये रखा। शिवाजी अपने १७ किले मुगलों को दे दें और बादशाह युवराज संभाजी को छःहज़ारी मनसबदार बनाए, इस तरह की यह बातचीत थी। औरंगज़ेब ने इस सन्धि को प्रसन्नता से स्वीकृत कर

लिया और बहादुरखाँ को उसकी विजय पर शाबासी दी। पर जब १७ अप्रैल १६७५ को फोंडा किले पर शिवाजी का अधिकार हो गया और बीजापुर के सेनापति बहलोलखाँ को रिश्वत देकर उन्होंने उसे अपने वश में कर लिया तथा कारवार, शिवेश्वर, अंकोला आदि पश्चिमी किनारे के महत्त्वपूर्ण स्थानों को भी अपने राज्य में मिला लिया तो इस बनावटी बातचीत की आवश्यकता नहीं रही। अतः मुगल दूतों को यह कहकर उन्होंने भगा दिया कि, "तुम लोगों के सेनापति ने ऐसा कौन-सा भारी पराक्रम कर दिखाया है जिसके कारण हम इस प्रकार की अपमानजनक सन्धि को स्वीकार करें? तुम लोग जल्द से जल्द यहां से निकल जाओ।"

जब औरंगज़ेब को इसकी खबर मिली तो वह गुस्से से आगबबूला हो गया। उसने आदिलशाह के साथ मित्रता के सम्बन्ध जोड़े। उससे मिलने वाली खंडनी माफ कर दी और उन दोनों ने यह निश्चय किया कि वर्षा समाप्त होते ही दक्षिण की ओर से बीजापुर की, और उत्तर की ओर से मुगल सेनाएँ एक साथ शिवाजी पर आक्रमण करें। मगर उससे पहले ही शिवाजी कर्नाटक के उत्तर एवं दक्षिण कानडा के जिलों में पहुँच गये और उन्होंने उस प्रदेश पर अधिकार कर लिया।

बीजापुर वालों के साथ गठबन्धन करके मुगलों ने शिवाजी को परास्त करने की योजना तो बनायी, परन्तु वह आचरण में नहीं आ सकी; क्योंकि बीजापुर के मुसलमानों और अफगानों के संघर्ष ने उग्र रूप धारण कर लिया और बहादुरखाँ के साथ मित्रता की बातचीत करने वाला खवासखाँ

बहलोलखाँ पठान द्वारा कपटपूर्वक मारा गया। तब बीजापुर के हब्शियों ने भी बहलोल के विरुद्ध विद्रोह किया। बड़े-बड़े सरदारों की हत्याएँ दिन-दहाड़े होने लगीं और इस प्रकार बीजापुर में अराजकता फैल गयी। तब बहादुरखाँ को बीजापुर जीत लेने का यह अच्छा मौका हाथ लगा। उसने अपनी सेना को लेकर बीजापुर पर धावा बोल दिया; मगर उसे बुरी तरह मुँह की खानी पड़ी। उस युद्ध में मराठों ने बीजापुर की सेनाओं की पूरी सहायता की थी।

इस बीच ११ नवम्बर १६७५ को शिवाजी ने सातारा के किले पर अधिकार कर लिया। वहां वे कुछ दिन के लिए ठहरे भी थे कि एक बड़ी बीमारी ने उन्हें आ दबोचा। यह बीमारी सिरदर्द की थी। संभवतः, राज्याभिषेक और उसके बाद की लड़ाइयों के सिलसिले में उन्हें जो अत्यधिक परिश्रम करना पड़ा था उसके कारण ही यह बीमारी हुई थी। यह बीमारी बड़ी ही कठिन प्रमाणित हुई। यहां तक कि उनकी मृत्यु की भी अफवाहें चारों ओर फैल गयीं। कुछ लोगों ने यह खबर फैलायी कि संभाजी ने ही बाप से अनबन होने के कारण उन्हें ज़हर दिलाकर मरवा डाला है। यह बीमारी दो-तीन मास तक चलती रही। उसके बाद शिवाजी महाराज स्वस्थ होकर फिर अपने कामों के लिए तैयार हो गए। इस बीमारी का एक प्रभाव अवश्य रहा। वह यह कि शिवाजी का मन उदास रहने लगा। समर्थ रामदास स्वामी ने उनसे मिलकर उनके मन की उदासी को बहुत-कुछ सीमा तक दूर तो किया, परन्तु उसे पूरी तरह मिटाना उनके लिए भी संभव न हो सका। यह उदासी उनके जीवन के अन्त तक रही, बल्कि आगे चलकर कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं जिनसे यह

उदासी बढ़ती ही गयी। शिवाजी द्वारा अपने गुरु रामदास को अपने राज्य की भिक्षा दिये जाने की दंतकथा संभवतः इसी काल से सम्बन्ध रखती है।

शिवाजी के स्वास्थ्यलाभ करते ही मराठों की सेनाओं ने नये उत्साह से शत्रुओं के प्रदेशों पर आक्रमण करने शुरु किये। एक सेना ने मार्च १६७६ में कर्नाटक के एक व्यापारी शहर अथणी पर धावा बोल कर ४-५ लाख रुपयों की लूट प्राप्त की, जिसमें ६० हज़ार रुपयों का अंगरेजों का कपड़ा भी शामिल था। उधर उत्तर में पेशवा मोरोपन्त ने रामनगर की तरफ नये किले बनवा कर और पुरानों की मरम्मत करा कर मराठों की सत्ता को दृढ़ किया और उसके बल पर सूरत के सूबेदार से खंडनी प्राप्त की। १६७६ के जुलाई महीने में गोलकुंडा के कुतुबशाह के बीच-बचाव से आदिलशाह के साथ शिवाजी का समझौता हो गया। उन दोनों के राज्यों की सीमाएँ कृष्णा नदी से निर्धारित की गयीं। उससे शिवाजी के राज्य में कुछ अधिक प्रदेश आ गया।

मुगल सेनापति बहादुरखाँ को शिवाजी ने मूर्ख बनाया और बीजापुरी सेनाओं को मार भगाया, जिससे मुगल साम्राज्य की नाक ही कट गयी! अतः औरंगज़ेब ने अपने उस दूधभाई की सहायता के लिए दिलेरखाँ को भेजा। उसके साथ उसने शिवाजी के भूतपूर्व सेनापति नेताजी पालकर को भी भेजा। इस नेताजी को औरंगज़ेब ने कपट और धमकी के बल पर मुसलमान बनाया था और उसका नाम मुहम्मद-कुलीखाँ रखा था। लगभग आठ-नौ बरस तक औरंगज़ेब ने उसे अफ़गानों के विरुद्ध लड़ने के लिए काबुल-कंधार भेज रखा था। जब दक्षिण जाने वाले सभी सूबेदार शिवाजी के

आगे हतप्रभ हो गये तो औरंगज़ेब ने सोचा कि मुहम्मद-कुलीखाँ को शिवाजी के विरुद्ध भेजा जाय तो शायद महाराष्ट्र का जानकार होने के कारण वह शिवाजी को हरा दे। नेताजी की शूरता के कारण उसे "दूसरा शिवाजी" ही कहा जाता था। अतः उसे असली शिवाजी के दमन के लिए भेजने में औरंगज़ेब की बुद्धिमत्ता ही प्रकट हुई।

परन्तु अपने पूर्व परिचित प्रदेश में आते ही मुहम्मद-कुलीखाँ के अन्तर में छिपा हुआ नेताजी पालकर फिर जाग उठा। वह अपनी छावनी से निकल कर सीधा रायगढ़ पहुँचा और उसने फिर से अपने प्रभु शिवाजी महाराज के पैर पकड़े। उसने फिर से हिन्दू धर्म में लौट आने की इच्छा प्रकट की। तब शिवाजी ने उसकी शुद्धि करवा कर उसे फिर से हिन्दू बना लिया। मुहम्मदकुलीखाँ नष्ट हो गया और १९ जून १६७६ को नेताजी पालकर का पुनर्जन्म हुआ। उसने शिवाजी की मृत्यु के पश्चात् संभाजी की भी सेवा की। सत्रहवीं सदी में इस प्रकार की शुद्धि की बात लोगों के लिए सर्वथा अग्राह्य थी। परन्तु शिवाजी ने रूढि के विरोध में खड़े होकर समाज के सम्मुख एक आदर्श रखा।

नेताजी के चले जाने से दिलेरखाँ की शक्ति बहुत घट गयी। इसलिए उसने बहलोलखाँ से मित्रता कर ली और उसकी सहायता से शिवाजी एवं गोलकुंडा के सुलतान को जीत लेने का विचार किया। उसकी प्रार्थना के अनुसार औरंगज़ेब ने बहादुरखाँ को वापस बुला लिया और दिलेरखाँ को दक्षिण का सूबेदार बना दिया। ●

दक्षिण की विजय

अब शिवाजी ने यह उचित समझा कि दक्षिण भारत को पूरी तरह जीत लिया जाय। अतः १६७६ के दशहरे के दिन सदा की तरह नया अभियान हाथ में लेते हुए उन्होंने प्रकट तो यही किया कि वे गोकर्ण महाबलेश्वर की ओर जा रहे हैं, परन्तु उधर न जाकर वे सुदूर दक्षिण बंकापुर-लक्ष्मेश्वर की ओर गये और वहां के आसपास के बीजापुरी प्रदेश पर अधिकार करने लगे। साथ ही बीजापुर एवं गोलकुंडा के दरबारों की खबर भी वे लेते रहे।

राजनीति में हमारा पड़ौसी ही हमारा शत्रु होता है और उस पड़ौसी का पड़ौसी उसका शत्रु होने के कारण, हमारा मित्र हो जाता है। शिवाजी एवं बीजापुर पड़ौसी होने के कारण एक दूसरे के शत्रु बन ही गये थे। उसी प्रकार बीजापुर एवं गोलकुंडा के राज्यों में भी शत्रुता थी। इसलिए गोलकुंडा का कुतुबशाह शिवाजी का मित्र बन गया। गोलकुंडा का जो प्रदेश दक्षिण-पूर्वी किनारे से लगा हुआ था (जिंजी, तंजौर, मदुराई आदि तमिलभाषी प्रदेश) वह बहुत

सम्पन्न था। हीरों की खानों एवं गोदावरी, कृष्णा, कावेरी जैसी समृद्धिशाली नदियों के कारण भी यह प्रदेश बहुत धनी था। प्रतिदिन की लड़ाइयों से, जैसी कि उत्तर एवं मध्य-भारत में होती रहती थीं, मुक्त रहने के कारण भी दक्षिण भारत की समृद्धि एवं सम्पन्नता बढ़ी चढ़ी थी। मुगलों के साथ लड़ने के लिए शिवाजी को धन की बहुत आवश्यकता थी। अतः उन्होंने गोलकुंडा के साथ मित्रता स्थापित करना ही उचित समझा। गोलकुंडा के दरबार में शिवाजी का राजदूत प्रह्लाद निराजी था जो विचक्षण कूटनीतिज्ञ था। उसने शिवाजी के आदेश के अनुसार प्रयत्न आरम्भ किये। सौभाग्य से उन दिनों अबुलहसन कुतुबशाह का वज़ीर मादण्णा (मदन पंडित) बड़ा समझदार व्यक्ति था। उसका भाई अक्कण्णा (एकनाथपन्त) भी बड़ा पुरुषार्थी था। वे दोनों शिवाजी की योग्यता और हिन्दवी स्वराज्य की प्रस्थापना के लिए किये जाने वाले उनके प्रयत्नों की महत्ता को समझते थे। अतः उन्होंने प्रह्लाद निराजी के प्रयत्नों में सहयोग दिया और मराठों के नये सार्वभौम राज्य को स्वीकृति देना कितना आवश्यक एवं उचित है, इसके विषय में भी उन्होंने कुतुबशाह को अच्छी तरह समझाया। तब अबुल हसन कुतुबशाह शिवाजी से बराबरी के नाते मिलने के लिए तैयार हो गया।

शाहजी द्वारा अर्जित राज्य में अपना हिस्सा अपने सौतेले भाई व्यंकोजी से प्राप्त करने का भी शिवाजी संकल्प रखते थे। इसके लिए उन्हें तंजौर जाने की आवश्यकता थी। यह अभियान बहुत ही दूर का था। इसलिए उन्होंने मोरोपन्त पेशवा, अण्णाजी दत्तो सचिव, दत्ताजी त्र्यंबक मंत्री आदि पर

राज्य-रक्षा का भार सौंपा और लगभग वैसा ही सब प्रबन्ध कर दिया जैसा कि आगरा जाते समय किया था। वे यह भी चाहते थे कि मुगलों के साथ समझौता करके वे तटस्थ हो जायँ, जिससे दक्षिण भारत की चढ़ाई के समय पीछे से मुगलों के आक्रमण की आशंका न रहे। उधर मुगल सरदार बहादुरखाँ बीजापुर पर चढ़ाई कर रहा था और वह इस बात के लिए उत्सुक था कि अपने दाहिने बाजू पर स्थित शिवाजी के साथ मैत्री स्थापित हो जाय, जिससे बीजापुर वाले असहाय हो जायं। अतः जब शिवाजी ने बहुमूल्य भेंटों के साथ अपने प्रधान न्यायाधीश निराजी रावजी को बहादुरखाँ के पास भेजा और दक्षिण भारत की चढ़ाई के समय महाराष्ट्र से कोई साल भर की अपनी अनुपस्थिति में तटस्थ बने रहने का वचन मांगा तो बहादुरखाँ ने दिसम्बर १६७६ में बड़ी प्रसन्नता से यह वचन उन्हें दे दिया। इससे शिवाजी मुगलों की तरफ से पूर्णतया निश्चिन्त हो गये। इस महान् अभियान पर निकलने से पहले वे किसी सत्पुरुष का आशीर्वाद लेना चाहते थे। अतः वे कोल्हापुर जिले में चटगांव के मौनी महाराज के दर्शनों के लिए गये। उनके साथ पेशवा मोरोपंत भी थे। उनके हाथों में चम्पकपुष्पों का हार एवं गुच्छा था। शिवाजी ने मौनी बाबा को प्रणाम किया और आशीर्वाद की प्रार्थना की। बड़ी देर तक वे मौनी बाबा के सम्मुख खड़े रहे। अन्त में मौनी महाराज ने शिवाजी को अपना कृपा प्रसाद देकर उन्हें आशीर्वाद दिया। लौटते समय भी शिवाजी इन मौनी बाबा के दर्शनों के लिए गये थे।

छत्रपति शिवाजी १६७७ के मार्च महीने में गोलकुंडा की राजधानी भागानगर (हैदराबाद) पहुँचे। कुतुबशाही

राज्य में प्रवेश करते ही शिवाजी ने अपने सैनिकों को कड़ी सूचना दे दी थी कि वहाँ के किसी भी निवासी को न तो लूटा जाय और न उन्हें किसी प्रकार का कष्ट दिया जाय। इस आदेश को न मानने वालों को कड़ी सज़ाएँ देने का भी प्रबन्ध किया गया था। अतः उनकी सेना ने गोलकुंडा के राज्य में किसी भी तरह की लूट-मार नहीं की और न ही प्रजा को सताया। उससे सुलतान और उसकी प्रजा पर अच्छा प्रभाव पड़ा। अबुल हसन कुतुबशाह ने शिवाजी की सार्वभौमता को स्वीकार किया और भरे दरबार में उनसे गले मिल कर बराबरी के नाते से उनका स्वागत किया। अपने सुलतान के इस महत्त्वपूर्ण मित्र एवं रक्षक का स्वागत करने के लिए भागानगर के निवासियों ने नगर को अत्यन्त उत्साह के साथ सजाया था। सुव्यवस्थित मार्गों से गुज़र कर लगभग पचीस हज़ार सैनिकों की मराठा सेना दाद महल के सामने पहुँची। पांच अधिकारियों सहित शिवाजी ऊपर गये और वहां तीन घण्टे तक सुलतान से उनकी मैत्रीपूर्ण बातें होती रहीं। शिवाजी के व्यक्तिगत आकर्षण से सुलतान अत्यधिक प्रभावित हुआ। उनके चरित्र, अनुशासन एवं संगठन से प्रसन्न एवं आश्वस्त होकर अबुल हसन ने अपने प्रधानमंत्री मादण्णा को आदेश दिया कि शिवाजी की सारी मांगें पूरी की जायँ।

शिवाजी महाराज लगभग ५ फरवरी से १० मार्च तक भागानगर में रहे। इस काल में कुतुबशाह ने फिर एक बार उनसे भेंट करके उन्हें मूल्यवान् हीरे-मोती उपहार में दिये। एक दिन मादण्णा ने शिवाजी को अपने यहां भोजन के लिए निमंत्रित किया। उस अवसर पर उनकी माँ भागम्मा ने स्वयं अपने हाथों से रसोई बनाकर शिवाजी को भोजन कराया।

इसी बीच कुतुबशाह और शिवाजी में एक समझौता भी हो गया। इस समझौते में निम्नलिखित बातें निश्चित हुई—

(१) भागानगर के निवास में हुए सेना के खर्चे के लिए कुतुबशाह शिवाजी को साढे चार लाख रुपये दे।

(२) आगामी अभियान के खर्चे के लिए कुतुबशाह शिवाजी को प्रतिदिन तीन हज़ार होन या प्रतिमास साढे चार लाख रुपये देता रहे।

(३) दक्षिण भारत की विजय में सहयोग देने के लिए गोलकुंडा राज्य की ओर से १ हज़ार घुड़सवार एवं ४ हज़ार पैदल सैनिकों के साथ वहां के सर-ए-लश्कर मिर्ज़ा मुहम्मद अमीन शिवाजी के साथ रहें। गोलकुण्डा का तोपखाना एवं गोला बारूद भी मराठों की सहायता के लिए रहे।

(४) गोलकुण्डा की इस सहायता के बदले में शिवाजी कुतुबशाही इलाक़े में सुव्यवस्था स्थापित करें और दक्षिण भारत में जीते हुए वे सारे प्रदेश जो पहले कभी शाहजी के अधिकार में नहीं रहे थे, और जो आदिलशाह द्वारा कुतुबशाह के राजा से छीन लिये गये थे, गोलकुंडा को दे दिये जायँ।

यहां स्मरण रहे कि शिवाजी के समय में दक्षिण भारत में दक्षिणी या मुल्की (स्थानीय) मुसलमान, जिनमें से कई बाहर से भी आये हुए थे, प्रबल थे। वहां पर मुल्की और ग़ैरमुल्की मुसलमानों में बड़ा संघर्ष चल रहा था। उससे लाभ उठाने का शिवाजो ने निश्चय किया, और स्थानीय मुसलमानों का पक्ष लेकर उन्होंने ग़ैरमुल्की (अर्थात् पठान, मुग़ल आदि) मुसलमानों को दक्षिण से मार भगाने के लिए एक संगठन खड़ा करने का प्रयत्न आरम्भ किया। गोलकुंडा के साथ

सन्धि करने में उनका यही प्रधान उद्देश्य था। अतः उन्होंने सुलतान अबुल हसन कुतुबशाह उर्फ तानाशाह को अपना विचार समझाया। कुतुबशाह को भी यह पसन्द आया। वे दोनों इस बात पर सहमत हो गये कि दक्षिण की बादशाही दक्षिणी लोगों के ही हाथ में रहे। उत्तर के मुग़लों को दक्षिण में प्रवेश न करने दिया। अब चूंकि दक्षिण के मुस्लिम शासक निर्बल हो चुके थे इसलिए इस नीति का वास्तविक अर्थ यही होता था कि दक्षिण भारत पर शिवाजी का ही अधिकार रहे। दक्षिण की विजयों से शिवाजी ने अपनी योग्यता शीघ्र ही प्रमाणित कर दी। शिवाजी सोचते थे कि सारे दक्षिण भारत पर अपना अधिकार पहले जमा लिया जाय, फिर दिल्ली की मुग़ल सत्ता को आक्रान्त करना सुगम हो जायगा।

इस नीति के अनुसार शिवाजी ने आदिलशाही सरदारों को पत्र लिखकर अपनी इस नयी दक्षिणी बादशाही के विकास में सहयोग देने का आवाहन किया। सन् १६४८ में अपने पिता शाहजी को कैद करने वाले बाजीघोरपड़े के बेटे मालोजी घोरपड़े को भी शिवाजी ने पिछली शत्रुता को भुला कर इसी प्रकार का पत्र लिखा। ९०० शब्दों का यह पत्र अब उपलब्ध हो गया है। उससे शिवाजी की दूरदर्शिता का अच्छी तरह पता चलता है। उसमें उन्होंने 'अपनी बादशाही बढ़ायी जाय, पठानों की बादशाही को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जाय' की नीति का स्पष्टीकरण किया था। उसमें उन्होंने लिखा था कि "बीजापुर में बहलोलखाँ पठान सर्वेसर्वा बन बैठा है। यह ठीक नहीं है। यदि पठान बलवान् हो जायँ तो वह सभी दक्षिणियों का नाश कर देंगे। इसलिए हमने हज़रत कुतुबशाह का समर्थन किया है। आप स्वयं

मराठा हैं। मैं आपका उसी प्रकार कल्याण चाहता हूँ जिस प्रकार मेरे पिताजी चाहते थे। पठान आपको जो जागीर दे रहे हैं, उससे दुगना मैं आपको कुतुबशाह से दिलवा दूंगा।"

परन्तु दुर्भाग्य से शिवाजी की राजनीति को समझने की योग्यता बीजापुर के सरदारों में नहीं थी। इसलिए उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली।

गोलकुण्डा की इस सन्धि के अनुसार शिवाजी महाराज कुतुबशाही सेनापति मिर्ज़ा मुहम्मद अमीन के साथ जो उस प्रदेश का अच्छा ज्ञानकार था, दक्षिण भारत जीतने गये और गोलकुण्डा के प्रधान-मन्त्री मादण्णा तथा सर-ए-लश्कर इब्राहीमखाँ ने बीजापुर पर चढ़ाई शुरु की।

दक्षिण भारत में ऐसा कोई प्रबल राजा या सरदार नहीं था जो शिवाजी का प्रतिरोध कर सकता। अतः विशेष दौड़-धूप या लड़ाई-झगड़ा किये बिना ही शिवाजी के कब्ज़े में दक्षिण भारत का बहुत-सा प्रदेश आ गया। इस प्रदेश में श्री शैल मल्लिकार्जुन तिरुपति बालाजी कांचीपुरम् (कांजीवरम्) आदि महत्त्वपूर्ण तीर्थक्षेत्र हैं। युद्ध का दबाव अधिक न होने से शिवाजी इन तीर्थों के दर्शन भी आराम से कर सके। कहते हैं कि भगवान् मल्लिकार्जुन के दर्शन होते ही शिवाजी के मन में यह इच्छा हुई कि वे अपना सिर काटकर शिवजी को समर्पित कर दें। उनके मन में संभवतः अब परलोक के विचार आ रहे थे।

दक्षिण भारत के इस समतल मैदान में बीजापुर की ओर से दो स्थानीय सूबेदार नियुक्त थे। एक था बीजापुर के भूतपूर्व मंत्री खान मुहम्मद का बेटा नसीर मुहम्मदखाँ, जो जिंजी में रहता था। दूसरा था बहलोलखाँ का एक आश्रित

अफगान शेरखाँ जिसका प्रधान केन्द्र जिंजी के दक्षिण में वलिगण्डपुरम् नामक स्थान में था। उससे भी और दक्षिण में था तंजौर का राज्य, जिसे सन् १६७५ ई० में शिवाजी के सौतेले भाई व्यंकोजी ने जीतकर स्थापित किया था। तंजौर के इस हिन्दू राज्य के बाद मदुरा का एक और हिन्दू राज्य पड़ता था। ये सारे विभिन्न राजा आपस में लड़कर एक-दूसरे को हड़पने पर तुले हुए थे।

शत्रु का प्रदेश जीतते और देवदर्शन करते हुए शिवाजी ७ मई को मद्रास से ७ मील पश्चिम में स्थित पेड्डापोलम् पहुँचे। वहां से उन्होंने ५ हज़ार घुड़सवारों को जिंजी उर्फ़ चंदी का पहाड़ी किला जीतने के लिए भेजा। यह किला बड़ा ही दृढ़ था। किलेदार था नसीर मुहम्मद, जो उस प्रदेश का सूबेदार भी था। उससे मराठों ने इस शर्त पर समझौता कर लिया कि उसे बीजापुर के प्रदेश में अन्यत्र वार्षिक पचास हज़ार रुपये की जागीर दे दी जायगी और उसके बदले में वह जिंजी का किला और उसके आसपास का प्रदेश मराठों को सौंप देगा। इस प्रकार बिना लड़ाई के ही यह क़िला मराठों को मिल गया। १३ मई १६७७ ई० को जिंजी पर मराठों का भगवा ध्वज फहराने लगा। शिवाजी ने उसमें कई जगह मरम्मत करायी। पुरानी दीवारों को गिरा कर नई पक्की दीवारें और बुर्ज़ बनवाये गये। इस पर उन्होंने बहुत पैसा खर्च किया। जिंजी कोई एक किला नहीं है। उसके अन्दर रायगिरि, कृष्णागिरि, एवं चान्द्रायणदुर्ग की किले-बन्दी वाली तीन पहाड़ियां हैं जिन्हें सुदृढ़ परकोटों की पंक्तियां एक-दूसरे से सम्बद्ध करती हैं। इस प्रकार यह तीन मील के घेरे का एक त्रिकोण-सा बन गया है। ये पहाड़ियां

कठोर एवं पथरीली हैं और उन पर इतनी बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं कि उन पर चढ़ना भी असंभव-सा ही है। इन तीनों पहाड़ियों पर शिवाजी ने पत्थर की दीवार के ऊपर प्रत्येक ओर किलेबन्दी करा दी।

आगे चलकर यह किला मराठों के बड़े काम आया। जब शिवाजी के पुत्र राजाराम को मुगलों के दबाव के कारण महाराष्ट्र छोड़कर दक्षिण भारत जाना पड़ा तब उन्होंने सात बरस तक इसी किले में रह कर मुगलों का मुकाबला किया।

जिजी की विजय के पश्चात् शिवाजी तिरुवन्नमल्लाई गये। वहां के और समोत्तिपेरुमल के दो मन्दिरों को मस्जिदों में बदल डाला गया था। शिवाजी ने उन मस्जिदों के स्थान पर फिर से मन्दिर बनवाये और उनमें शिवलिंगों की स्थापना करायी। समोत्तिपेरुमल के मन्दिर में जब शिवलिंग की स्थापना करायी गयी तब वहां के सहस्र खंभों वाले सभा-मंडप में एक लाख गायें लायी गयी थीं। दक्षिण दिग्विजय के अवसर पर किया गया यह कार्य सचमुच बड़ा क्रान्तिकारी था।

जिजी के बाद दक्षिण भारत का सबसे बड़ा किला वेलूर का था। मई १६७७ ई० में उस पर भी शिवाजी ने धावा बोल दिया। परन्तु उसका हब्शी किलेदार अब्दुल्लाखाँ बड़ा शूर निकला। उसने चौदह मास तक वीरतापूर्वक किले का बचाव किया। पर अगले साल जुलाई में महाराष्ट्र से रघुनाथपन्त और आनन्दराव ने आकर उस पर अधिकार कर लिया। जब शिवाजी ने देखा कि वेलूर जल्दी हाथ नहीं आयेगा। तब वे नरहरि रुद्र को दो हज़ार घुड़सवार एवं पांच हज़ार पैदल सैनिकों सहित छोड़कर आगे बढ़े। इस

बीच उन्होंने वेलूर के पास दो पहाड़ियों पर 'साजरा' व 'गोजरा' नाम के दो नये किले भी बनवाये और वहां तोपें लगाकर वेलूर के किले पर गोलाबारी करने का प्रबन्ध किया।

उसके बाद वे शेरखाँ के प्रदेश में गये। वहां उनका सामना करने के लिए शेरखाँ और उसका बेटा इब्राहीमखाँ नौ हज़ार घुड़सवारों और चार हज़ार पैदल सैनिकों के साथ आये। जुलाई के दूसरे सप्ताह १५ जुलाई १६७७ को शिवाजी ने उन पर ऐसा प्रबल आक्रमण किया कि शेरखाँ को बुरी तरह पराजित होकर अपना सारा प्रदेश और बीस हज़ार होन देने की शर्त पर शिवाजी से सन्धि करनी पड़ी। बीस हज़ार होन के लिए उसने अपने पुत्र इब्राहीम को शिवाजी के पास ज़मानत के रूप में रखा और फरवरी १६७८ में धन देकर अपने बेटे को छुड़ाया।

शेरखां के प्रदेश पर अधिकार करके शिवाजी और आगे बढ़े और काबेरी नदी के किनारे तिरुमलबाड़ी नामक नगर में पहुँच कर पड़ाव डाला। वहां बैठे-बैठे उन्होंने मदुराई के नायक के साथ सन्धि की, जिसके अनुसार उन्हें वार्षिक ६ लाख होन की खंडनी देना नायक ने स्वीकार किया।

तिरुमलवाड़ी से १० मील दक्षिण में तंजौर था, जहाँ उनका सौतेला भाई व्यंकोजी राज्य करता था। शिवाजी ने उसे मिलने के लिए बुलाया। व्यंकोजी शिवाजी से मिला और आठ दिन तक उनके साथ रहा। शिवाजी ने उससे कहा कि—"आपने अपनी सामर्थ्य से जो कुछ कमाया है, उस पर आपका ही अधिकार है, परन्तु हमारे पिताजी ने जो कुछ कमाया था, उसमें मेरा भी आधा हिस्सा है। पिताजी के

देहान्त के पश्चात् तेरह बरस तक आपने मेरे हिस्से में से मुझे कुछ भी नहीं दिया। अब मेरा कहना है कि पिताजी जो कुछ छोड़ गये थे, उसका हिसाब करके मुझे आधा हिस्सा दिया जाय। मैं सदा आपकी सहायता करता रहूँगा। आप मुझे पराया न मानें !" व्यंकोजी को शिवाजी की ये बातें पसन्द नहीं आयीं। वह केवल 'आज्ञा-प्रमाण' कहकर चुप हो गया। उसके मन में शिवाजी के प्रति प्रेम के स्थान पर डर ही था।

व्यंकोजी के साथियों ने भी शिवाजी के बारे में बतलाकर उसे और अधिक डरा दिया। इसलिए वह २५ जुलाई की रात को अचानक किसी से कहे बिना चुपचाप तंजौर भाग गया। इससे शिवाजी को बड़ा दुःख हुआ। डा० यदुनाथ सरकार आदि कुछ इतिहासकारों का मत है कि तंजौर की जागीर स्वयं व्यंकोजी की कमाई हुई थी, इसलिए उस पर शिवाजी का दावा अनुचित था। वे यह भी कहते हैं कि शिवाजी ने उससे तीन-चौथाई संपत्ति की मांग की और उसके इनकार करने पर उस पर पहरा लगवा दिया। तब वह चतुराई से उनके सेवकों को धोखा देकर भाग गया।

इसी समय शिवाजी को रायगढ़ की ओर जाने की आवश्यकता हुई। इसलिए अपने सरदारों को दक्षिण में छोड़कर वे महाराष्ट्र चले आये। आते समय उन्होंने कावेरी, पट्टम्‌चिदम्बरम्, वृद्धाचलम्, कोलार, बालापुर, श्रीरंगपट्टण, बंगलूर, शिरें, होसकोट, अरणी आदि प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। जब वे तोरगल पहुँचे तो उन्हें यह खबर मिली कि व्यंकोजी ने शिवाजी के सरदार संताजी पर अचानक धावा बोल दिया था, पर वलीगण्डपुरम् की इस लड़ाई में व्यंकोजी को बुरी तरह मुंह की खानी पड़ी। जब इस तरह

मार पड़ी तो व्यंकोजी के होश ठिकाने आये और शिवाजी के दक्षिण भारत के मंत्री रघुनाथ नारायण हणमंते के द्वारा उसने शिवाजी से संधि की बातचीत शुरु की। तब शिवाजी ने उसे उसका सारा प्रदेश लौटा दिया और साथ ही अपनी ओर से भी कुछ अधिक प्रदेश दे दिया। आगे चलकर जब बीजापुर के वज़ीर सिद्दी मसऊद के साथ शिवाजी की संधि हुई तो शिवाजी ने व्यंकोजी को बीजापुर की दासता से मुक्त करवा दिया। यह सब करते समय वे 'छत्रपति' नहीं बल्कि 'भाई' थे। उन्होंने वार्षिक ५ लाख होन की आय वाला प्रदेश अपनी भावज की साड़ी चोली के लिए और वार्षिक सात लाख होन की आय का इलाका 'भाई के दूधभात के लिए' दिया था। भविष्य में भी उन्होंने अपनी तरफ से भाई के साथ प्रेमभाव बनाये रखा।

इस प्रकार लगभग डेढ़ बरस तक दक्षिण भारत में रह कर उन्होंने उस प्रदेश पर अपना आधिपत्य जमा लिया और १६७८ के जून महीने में वे वापस रायगढ़ पहुँचे।

इस डेढ़ बरस की अवधि में शिवाजी ने दक्षिण भारत में ६० योजन लम्बा और ४० योजन चौड़ा प्रदेश जीता, जिसके अन्तर्गत कोई सौ क़िले पड़ते थे और जिसकी वार्षिक आय २० लाख होन थी। इस दिग्विजय से मराठा राज्य की सीमाएँ दक्षिणी सागर तक पहुँच गयीं। आगे चल कर मराठों को जब महाराष्ट्र से भाग कर दक्षिण भारत जाना पड़ा तब उनके लिए, वहां सारा इलाक़ा परिचित ही था। इस अभियान में संताजी भोंसले, हंबीरराव मोहिते, जनार्दन पंत आदि नये-नये सरदार आगे आये जिन्होंने भविष्य में बहुत

बड़े-बड़े काम किये। इस दक्षिण-दिग्विजय का एक लाभ यह भी हुआ कि आगे चलकर जब मुग़लों ने बीजापुर और गोलकुंडा की सल्तनतें खत्म कीं तब उन राज्यों से शिवाजी द्वारा छीना हुआ यह इलाक़ा मुग़लों के अधिकार से मुक्त ही रह गया, वरना वह मुग़लों के हाथों में पड़ जाता।

यज्ञ की समाप्ति

दक्षिण दिग्विजय के बाद शिवाजी का भाग्य-सूर्य ढलने लगा और उनके जीवन की संध्या तेजी से निकट आने लगी। उस दु:खपूर्ण घटना की छाया उनके अन्तिम डेढ़-दो वर्षों में स्पष्ट दिखाई देने लगी थी।

शिवाजी के अन्तिम दिनों में उन पर एक अत्यन्त ही भयंकर आघात हुआ। वह था उनके ज्येष्ठ पुत्र युवराज संभाजी का मुगलों से जा मिलना। इस समय संभाजी की आयु इक्कीस वर्ष की थी।

उसने मुगल सरदार दिलेरखाँ के साथ पत्र-व्यवहार आरम्भ किया और परली (सज्जनगढ़) के क़िले से भाग कर १३ सितम्बर १६७८ को वह दिलेरखाँ से जा मिला। डा० सरकार आदि कुछ इतिहास-लेखकों ने इस सम्बन्ध में यह लिखा है कि संभाजी बड़ा स्वेच्छाचारी, अस्थिरचित्त, दुस्साहसी, अविवेकी और अत्यधिक व्यभिचारी था। एक विवाहित ब्राह्मण स्त्री के साथ बलात्कार करने पर उसे पन्हाला के

क़िले में क़ैद कर दिया गया था। कुछ अन्य इतिहासकारों ने यह भी लिखा है कि शिवाजी की पटरानी एवं संभाजी की सौतेली माँ सोयराबाई अपने बेटे राजाराम को संभाजी के स्थान पर युवराज बनाना चाहती थी और उसने शिवाजी के मंत्रियों को अपनी ओर मिला लिया था। इन इतिहासकारों ने यह भी लिखा है कि संभाजी ने आगे चलकर अपनी इस सौतेली मां को दीवार में चुनवाकर मार डाला था। कुछ अन्य इतिहासकारों ने यह लिखा है कि शिवाजी अपना राज्य संभाजी और राजाराम में बाँटना चाहते थे जो संभाजी को पसन्द नहीं था। वह समूचे राज्य का मालिक बनना चाहता था। इसलिए वह भागकर मुगलों से जा मिला।

संभाजी के आ जाने से मुगलों को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उसे सात-हज़ारी मनसबदार बना दिया और उसकी सहायता से मराठों के प्रदेशों पर कब्ज़ा करने की योजनाएँ बनायीं। उनके अनुसार दिलेरखाँ ने १७ अप्रैल १६७९ को भूपालगढ़ नामक किले पर कब्ज़ा भी कर लिया और पन्हाला का घेरा डालने में संभाजी से महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त कर लिया। इस प्रकार अपने पिता द्वारा अर्जित सम्पत्ति को लूटने में संभाजी ने शत्रु की सहायता करके स्वयं अपने ही पाँवों पर कुल्हाड़ी मार ली।

परन्तु यह आत्मघातक कार्यक्रम अधिक दिन नहीं चल सका। उसे एक भयंकर समाचार मिला। औरंगज़ेब ने दिलेरखाँ को लिखा था कि वह संभाजी को कैद करके दिल्ली भेज दे। इसका पता संभाजी को लगा और वह चौकन्ना हो गया। इधर शिवाजी ने अपने गुप्तचरों द्वारा संभाजी को समझाने का प्रयत्न आरम्भ किया था। अतः वह

२० नवम्बर १६७९ की रात को चुपचाप अपनी पत्नी को पुरुषों का वेष पहनाकर मुगलों की छावनी से भाग निकला और बीजापुर होता हुआ ४ दिसम्बर १६७९ को पन्हाला पहुँच गया। उस समय शिवाजी महाराज रायगढ़ में थे। वे भी तुरन्त पन्हाला पहुँचे, जहां १३ जनवरी १६८० के दिन उन दोनों का पुनर्मिलन हुआ।

संभाजी के इस खेदजनक कार्य से तथा अनेक घरेलू झंझटों से उद्विग्न होने पर भी शिवाजी महाराज अपना कर्त्तव्य पहले की ही तरह करते रहे। मुगल सेनापति दिलेरखाँ ने बीजापुर का घेरा डाला था। जब उससे बचने का कोई उपाय नहीं रहा तो बीजापुर के नये अभिभावक सिद्दी मसऊद ने शिवाजी से सन्धि करके सहायता के लिए प्रार्थना की। उस प्रार्थना को स्वीकार कर शिवाजी तुरन्त बीजापुर की सहायता के लिए गये। परन्तु उन्होंने देखा कि बीजापुर के आसपास दिलेरखाँ का मुकाबला करना कठिन है। इसलिए उन्होंने मुगलों के इलाके में छापे मारकर लूट-पाट शुरु की। पेशवा मोरोपन्त ने भी मुगलों का बहुत-सा प्रदेश लूट कर सूरत की तरफ धावा बोला। इससे मुगलों के लिए अपनी सारी शक्ति बीजापुर पर केन्द्रित करना असम्भव हो गया। फिर भी दिलेरखाँ बीजापुर के बाहर ही जमा रहा। इसलिए शिवाजी ने उसकी सेना को घेर कर उसकी रसद तोड़ दी और बीजापुर को आर्थिक सहायता पहुँचायी। इससे दिलेरखाँ को असफल होकर घेरा उठाना पड़ा। वह हार कर लौट गया और इस तरह शिवाजी की सहायता के कारण बीजापुर का राज्य बच गया।

जंजिरा के हब्शी शिवाजी को बहुत सताते थे। शिवाजी

उनका किला जीत लेने का प्रयत्न करते रहे, मगर अंगरेज हब्शियों की मदद करते थे, इसलिए उन्हें हराना कठिन होता था। अतः उन्होंने बम्बई के पास खांदेरी द्वीप पर एक मज़बूत किला बना कर बम्बई की नाकाबन्दी की (अगस्त १६७९ से जनवरी १६८०)। अंगरेजों ने बहुत सिर पटका परन्तु उनकी एक न चली। अन्ततः उन्हें खांदेरी पर मराठों का अधिकार स्वीकार करके उनसे सन्धि करनी पड़ी। इसी प्रकार शिवाजी ने जंजिरा के सामने ही एक द्वीप पर पद्मदुर्ग नाम का किला बनवाया। आगे चलकर पेशवाओं के ध्यान में यह बात नहीं रही और वे इन विदेशी शक्तियों की उपेक्षा करके दिल्ली की ओर ही दौड़ते रहे।

अन्ततः वह क्षण आ पहुँचा, जिससे इस संसार में उत्पन्न कोई भी जीवधारी नहीं बच सकता। अपना तत्कालीन कार्य पूरा करके शिवाजी महाराज अपनी राजधानी रायगढ़ पहुँचे। उनके छोटे बेटे राजाराम का यज्ञोपवीत अभी नहीं हुआ था। अतः उन्होंने ७ मार्च १६८० को उसका संस्कार किया और १५ मार्च को अपने भूतपूर्व सेनापति स्वर्गीय प्रतापराव गुजर की बेटी जानकी के साथ उसका विवाह भी कर दिया। इस समय राजाराम की आयु ११ बरस की थी। इसके बाद केवल आठ-दस दिन ही उनका स्वास्थ्य अच्छा रहा। २३ मार्च को उन्हें ज्वर हो आया और खून के दस्त आने लगे। बारह दिन तक यह रोग चलता रहा और अन्त में हिन्दू जाति को जाग्रत कर नवजीवन प्रदान करने वाला वह नरपुंगव शनिवार ३ अप्रैल १६८० के दिन, दोपहर में, इस लोक से चल बसा। अभी उनकी आयु के ५० वर्ष ही पूरे

हुए थे। उस दिन चैत्र की पूर्णिमा थी—परन्तु सारे महाराष्ट्र में अंधेरा छा गया था।

शिवाजी के देहान्त के समय उनका ज्येष्ठ पुत्र एवं राज्य का अधिकारी संभाजी पन्हाला में था। उसे शिवाजी की मृत्यु की खबर न मिले, इसका प्रबन्ध मंत्रियों ने किया और शिवाजी की उत्तरक्रिया राजाराम की ओर से साबाजी भोसले शिगणापूरकर नामक व्यक्ति से करायी। इसके बाद राजाराम को राजा बनाने की दिशा में मंत्रियों ने पग उठाने शुरु किये। संभव है, उसमें राजाराम की माता सोयराबाई का भी हाथ हो। संभाजी को कैद करने के विचार से सचिव अण्णाजी दत्तो और पेशवा मोरोपन्त ने पन्हाला पर धावा बोल दिया। परन्तु सेनापति हंबीरराव मोहिते संभाजी के पक्ष में था, इसलिए जीत संभाजी की रही। उसने अण्णाजी दत्तो तथा मोरोपन्त को कैद कर लिया और ११ जून को वह रायगढ़ पहुँच गया। वहां २० जुलाई को उसने अपना राज्याभिषेक कराया और राजकाज आगे चलाया। आगे चलकर संभाजी औरंगज़ेब द्वारा पकड़ा गया और धर्म के लिए बलिदान हो गया। ●

शिवाजी की महत्ता

कहते हैं कि शिवाजी ने अपने अन्तिम दिनों में अपने राज्य के विषय में यह कहा था कि—"मैंने जब स्वराज्य का श्रीगणेश किया तब मेरे अधिकार में केवल वार्षिक चालीस हज़ार होन की आय वाला पूना का परगना था। अब मेरा राज्य एक करोड़ होन की वार्षिक आय वाला हो गया है।" उनके इस कथन में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं थी। उत्तर में सूरत जिले के अन्तर्गत रामनगर से लेकर दक्षिण में वर्तमान मैसूर राज्य के कारवार या गोकर्ण महाबलेश्वर तक, पुर्तगालियों द्वारा अधिकृत परगनों को छोड़कर, सारा प्रदेश शिवाजी की मृत्यु के समय उनके राज्य में था। इस राज्य की पूर्वी सीमा उत्तर में बांगलाण को सम्मिलित करती हुई दक्षिण में नासिक और पूना के परगनों के बीच टेढ़ी-मेढ़ी होती दक्षिण की ओर बढ़ती थी और सातारा का सारा परगना तथा कोल्हापुर परगने का बहुत-सा भाग उन्हीं के राज्य की सीमा में पड़ता था। उन्हीं से लगा बेलगांव से लेकर मैसूर राज्य के बेल्हारी परगने के सामने वाले तुंगभद्रा

के तट तक फैला हुआ कन्नड़ देश का पश्चिमी भाग था, जिसे कुछ ही समय पहले जीत कर शिवाजी ने स्थायी रूप से अपने राज्य में मिला लिया था।

कोप्पल के पास तुंगभद्रा के तट से लेकर वेलूर और जिंजी तक के प्रदेश को, जिसके अन्तर्गत पुराने मैसूर राज्य के उत्तरी, मध्य के एवं पूर्वी भाग तथा बेल्हारी, चित्तूर और अर्काट के परगने आते थे, शिवाजी ने कुछ ही वर्ष पहले जीता था।

इन स्थिर प्रदेशों के अतिरिक्त निरन्तर घटने-बढ़ने वाली एक बहुत चौड़ी पट्टी ऐसे प्रदेशों की भी थी जहां यद्यपि शिवाजी की आज्ञाएँ मान्य होती थीं, फिर भी जिस पर उनका एकाधिपत्य नहीं था। जब-जब मराठा सेनाएँ वहां पहुँच जाती थीं, तब-तब वहां से निश्चित कर प्राप्त किया जाता था। उस प्रदेश के निश्चित लगान का चौथाई भाग ही मराठे वहां से प्राप्त करते थे। मराठों को दिया जाने वाला यह कर साधारण बोलचाल में "चौथ" कहलाने लगा। चौथ देने से उस प्रदेश में मराठा सैनिकों या मराठा कर्मचारियों की अवांछनीय उपस्थिति से छुटकारा पाने के अतिरिक्त उस प्रदेश के निवासियों को कोई लाभ नहीं होता था; क्योंकि उससे उस प्रदेश में उठने वाले आन्तरिक उपद्रवों को दबाने या बाह्य आक्रमणों से बचाने का या ऐसा और कोई भी उत्तरदायित्व शिवाजी पर नहीं आता था। शिवाजी के दरबारी सभासद की गणना के अनुसार उनकी आय कुल मिलाकर एक करोड़ होन के लगभग (चार करोड़ रुपया) होती थी और यदि चौथ की पूरी प्राप्ति हो जाती तो उससे अस्सी लाख होन और मिल जाते थे।

शिवाजी के रंग-रूप का वर्णन कई पश्चिमी लोगों ने लिखा है। उससे यह ज्ञात होता है कि शिवाजी मंझोले कद, गठीले बदन और गोरे रंग के थे। उनके चौड़े माथे से उनकी बुद्धिमत्ता झलकती थी, उनकी गरुड़ जैसी नोकदार नाक उनके स्वभाव की स्थिरता एवं निश्चय बताती थी। उनकी निर्मल एवं तीक्ष्ण बुद्धि उनके मन की निर्मलता, गहराई एवं चपलता को प्रकट करती थी। उनकी दाढ़ी, चोगा एवं पगड़ी अत्यन्त प्रभावशाली थी और देखने वाले पर वे गहरी छाप डालते थे। वे अपनी वेषभूषा के विषय में बड़ी ही सावधानी रखते थे।

शिवाजी के उदय से पहले सारा हिन्दू समाज बिलकुल मृतवत् हो गया था। देश के किसी भी भाग के हिन्दुओं में जीवन का कोई चिह्न दिखाई नहीं देता था। मुस्लिम शासकों की चक्कियों में सभी पिसे जा रहे थे। आत्मसम्मान नाम को भी नहीं बचा था। मुसलमानों की नौकरी में किसी को लज्जा भी नहीं आती थी; बल्कि उनकी दया के टुकड़े पाने के लिए हिन्दू सरदार कुत्तों की तरह एक-दूसरे से लड़ते रहते थे। ऐसी स्थिति में शिवाजी ने अपना सिर ऊँचा उठाया और लोगों में यह विश्वास पैदा किया कि हिन्दू भी सम्मान पूर्वक जी सकते हैं, आततायियों के अत्याचारों का प्रतिरोध कर सकते हैं और सार्वभौम छत्रपति भी बन सकते हैं।

महाराष्ट्र की जनता के लिए भी शिवाजी का आविर्भाव एक विशेष महत्त्व रखता है। उससे पहले साढ़े तीन सौ वर्षों से मराठी जनता मुसलमानों द्वारा कुचली जाती रही थी। उस में अपनी अस्मिता का कुछ भी अंश शेष नहीं रहा था। उनकी बुद्धि, उनकी वीरता, उनका पराक्रम सब कुछ मुस्लिम

शासकों की सेवा में समर्पित था। शिवाजी के आगमन से वे अपनी इस दुर्दशा को अच्छी तरह जान गए और उन्होंने अपने अन्दर की जड़ता को नष्ट कर नये जीवन का अनुभव किया। अपनी महत्ता को उन्होंने पहचाना। उसके बाद लगातार सवा सौ वर्षों तक वे सारे भारतवर्ष में फैलते गये और दिल्ली के तख्त पर अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी व्यक्ति को बैठाने की शक्ति उन्होंने प्राप्त कर ली। शिवाजी के उदाहरण से प्राप्त संबल आगे भी उनके काम आता रहा। अंगरेज़ों के विरुद्ध लड़ने में उन्होंने शिवाजी से ही स्फूर्ति प्राप्त की और आज भी उनके लिए शिवाजी एक महान् स्फूर्ति-स्रोत बना हुआ है। शिवाजी ने उन्हें सिखाया है कि तुम किसी पर अत्याचार मत करो पर साथ ही किसी के अन्याय को सहन भी मत करो।

शिवाजी ने हिन्दवी अर्थात् हिन्दुओं के राज्य की स्थापना का संकल्प किया था और उनकी दृढ़ धारणा थी कि सत् संकल्प को भगवान अवश्य पूरा कर देते हैं। स्वराज्य स्थापना के बिलकुल प्रारम्भिक दिनों में अर्थात् १७ अप्रैल १६४५ के दिन दादाजी नरसप्रभु देशपांडे के नाम लिखा हुआ उनका एक पत्र मिला है। इस पत्र में उन्होंने लिखा था—"आपको बीजापुर वालों ने इसलिए धमकाया है कि आप हमारे साथ सहयोग करते हैं। इससे आपके पिता जी बहुत घबड़ा गये हैं। इस पर हमारा कहना यह है कि बीजापुर के सुलतान के हम और आप अविश्वस्त नहीं हैं। आपके कुल देवता श्री रोहिरेश्वर हैं। उन्होंने हमें सफलता प्रदान की है और आगे भी *हिन्दवी स्वराज्य* की स्थापना करके वे हमारी सारी अभिलाषा को पूर्ण करेंगे। अतः आप अपने पिता जी से

कहिए कि वे न घबड़ायें। राज्यश्री दादाजी कोंडदेव के समक्ष परमेश्वर को साक्षी रख कर हमने और आपने एक-दूसरे से मित्रता बनाए रखने का जो निश्चय किया है, उसे वज्र समान समझें। *भगवान चाहते हैं कि यह राज्य (हिन्दुओं का स्वराज्य)* बने। अतः आप अपने पिता जी को आश्वासन दें।"

इस दृढ़ आस्था के कारण ही वे अनेक संकटों में अविचल रह कर सफलता पूर्वक उनका सामना कर सके।

यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि शिवाजी इसी लिए हिंदुओं का राज्य स्थापित करना चाहते थे कि विधर्मियों के राज्य में हिंदुओं पर अत्याचार होते रहते थे और उन्हें न्याय नहीं मिलता था। अतः अपने राज्य में भी वे अन्य धर्मियों के लिए यह शंका रहने देना नहीं चाहते थे। उन्होंने अपने राज्य में किसी भी विधर्मी के साथ अन्याय नहीं होने दिया। बीसवीं सदी में जिस धर्मनिरपेक्ष राज्य की बात की जाती है, उसे शिवाजी ने प्रत्यक्ष आचरण में लाकर दिखा दिया था। खफ़ीखां जैसे उनके कट्टर विरोधी आलोचकों तक को विवश होकर उनके व्यवहार की प्रशंसा करनी पड़ी। उन्होंने दक्षिणी मुसलमानों की सहायता करके मुगलों को दक्षिण में पैंठने न देने की जो योजना बनायी थी, उससे भी उनका यह सर्वधर्म-सम-भाव प्रकट होता है।

शिवाजी यह जान गए थे कि मराठा लोग लड़ने में तो जरूर प्रवीण हैं, मगर व्यापार-व्यवसाय आदि में उनकी रुचि नहीं है। अतः उन्होंने गुजरात के वैश्यों को लाकर पूना और महाराष्ट्र में बसाया, जिससे वे अपने कौशल से महाराष्ट्र का व्यापार-व्यवसाय बढ़ायें। उसके अनुसार कुछ गुजरातियों

ने आकर महाराष्ट्र में टकसालें भी खोलीं और महाराष्ट्र की अर्थनीति में महत्त्वपूर्ण योग दिया। इससे पता चलता है कि उनके मन में अन्य भाषा-भाषी लोगों के प्रति किसी प्रकार का अविश्वास नहीं था।

शिवाजी जन्मजात नेता थे। बचपन से ही उन्होंने अनुयायी एकत्रित करना आरम्भ किया था। इनमें से कई अनुयायी आगे चल कर बड़े वीर, सेनापति,कूट-नीतिज्ञ आदि बन सके। शिवाजी में एक ऐसा व्यक्तिगत आकर्षण था कि जिस किसी का भी परिचय होता वह उनके प्रति मन्त्रमुग्ध-सा हो जाता था। देश के सभी सुयोग्य व्यक्ति आप ही आप उनके पास खिंचे चले आते थे। शिवाजी के कर्मचारी तन,मन,धन से अपने स्वामी की सेवा करते थे। शिवाजी की चकाचौंध करने वाली विजयों तथा उनके मुख पर सदैव खेलने वाली मनमोहक मुस्कराहट से मुग्ध होने वाले उनके सैनिकों की आंखों के वे तारे बन गए थे। मानव-चरित्र को परखने की उनकी अचूक राजोचित क्षमता ही उनकी अनोखी सफलता का प्रधान कारण थी।

सेनापतियों, अधिकारियों, राजनीतिज्ञों, मंत्रियों तथा कर्मचारियों के चुनावमें शिवाजी ने कभी भूल नहीं की। उन के सैनिक-संगठन की कुशलता अनुकरणीय थी। प्रत्येक वस्तु के लिए पहले से ही प्रबन्ध कर दिया जाता था और वह एक उपयुक्त निरीक्षक की देखरेख में निश्चित स्थान पर सदैव तैयार रहती थी। उनका गुप्तचर-विभाग बहुत ही कार्य-कुशल था और जिधर भी लड़ाई करने की वे सोचते थे, उस प्रदेश की छोटी-से-छोटी बातों का पूरा-पूरा पता उन्हें पहले से ही मिल जाता था। बहुत दूरी पर होते हुए भी उन

की सेना के विभिन्न दल उन की इच्छा के अनुसार सम्मिलित या अलग हो जाते थे और इसमें कभी कोई भूल नहीं हुई। पीछा करने वाले या विरोधी शत्रुओं का उपयुक्त रीति से सामना किया जाता था और यह सब होते हुए भी लूट का सारा माल बिना किसी हानि के बहुत जल्दी नियत स्थान पर पहुंचा दिया जाता था। अपने सैनिकों की जातीय प्रवृत्तियों एवं विशेषताओं, तद्देशीय भौगोलिक परिस्थिति, उस समय वहां काम आने वाले अस्त्र-शस्त्रों तथा शत्रु-पक्ष की आन्तरिक दशा को समझ-बूझ कर उनके उपयुक्त युद्ध-शैली को वे सहज-बुद्धि से अपना लेते थे, जिससे उनकी जन्मजात सैनिक प्रतिभा प्रकट होती है। तीव्र-गति से चलने वाले पैदलों की सहायता पाकर दूर-दूर तक धावा मारने वाले चपल मराठा घुड़सवार औरङ्ग़ज़ेब के शासन के लिए सर्वथा दुर्दमनीय हो गये थे।

शिवाजी में अपने अनुयायियों एवं साथियों के गुणों की कद्र करने की वृत्ति बहुत बड़े परिमाण में विद्यमान थी। अत: उनके साथ एवं अधीन काम करने वालों को पूरा विश्वास रहता था कि उनके काम का अवश्य मान किया जायेगा। यद्यपि शिवाजी ने जमीन-जाग़ीरें देना बन्द कर दिया था, फिर भी नक़द रुपयों या सोने के गहनों आदि से वे अपने सैनिकों को पुरस्कृत करते रहते थे; जिससे उनका उत्साह बढ़ता रहता था। पर साथ ही अनुशासन के पालन में भी वे बड़े कठोर रहते थे। इस सम्बन्ध में १८ जनवरी १६७५ का जिवाजी विनायक सूबेदार के नाम लिखा हुआ एक पत्र देखने योग्य है। इस सूबेदार को आदेश दिया गया था कि वह पद्म-दुर्ग बनाने वाले लोगों को अनाज, पैसा आदि

पहुँचाये। मगर उसने वह काम नहीं किया। तब शिवाजी ने यह पत्र लिखा था—

"आप से कहा गया था कि आप दौलतखाँ और दर्या सारंग को धन एवं अनाज पहुंचा दें। मगर मालूम हुआ है कि आपने वह काम नहीं किया। बड़ा आश्चर्य हुआ। आप जैसे अयोग्य व्यक्ति बहुत ही कम होंगे।...हमने पद्मदुर्ग का निर्माण करके हब्शियों की राजपुरी की छाती पर दूसरी राजपुरी बनायी है। उस काम में आप से सहयोग की आवश्यकता है।...... मगर आप तो बड़े नमकहराम निकले।......शायद हब्शियों ने आपको कुछ रिश्वत देकर खरीद लिया है। इसीलिए आपने ऐसा बर्ताव किया। ऐसे नौकरों को कैसे ठिकाने लगाया जा सकता है, यह हम अच्छी तरह जानते हैं। आप समझते होंगे कि आप ब्राह्मण हैं, इसलिए आप के अपराधों को क्षमा किया जायगा। मगर यह आपकी भूल है। *आप भले ही ब्राह्मण हों, आपका अपराध कभी क्षमा नहीं होगा।*......यह सब ध्यान में रखकर बर्ताव करें......।"

अपनी प्रजा के कल्याण का विचार शिवाजी को सदा रहता था। उन्होंने शत्रुओं की प्रजा को कई बार लूटा, क्योंकि उस समय की वही राजनीति थी; परन्तु उन्होंने कभी भूल से भी अपनी प्रजा को कष्ट नहीं दिया। इतना ही नहीं, अपितु वे इस बात से सदा सतर्क रहते थे कि उनकी सेना से कभी जनता को कष्ट न पहुँचे। इस सम्बन्ध में वे अपने सैनिकों को सदा सूचित भी करते रहते थे। इस प्रकार के उनके कुछ पत्र मिले हैं, जिन से उनकी प्रजा-वत्सलता प्रकट होती है। शाइस्ताखाँ के आक्रमण के समय २३ अक्तूबर १६६२ को रोहिडखोरे (रोहिड़ा घाटी) के देशमुख के नाम एक पत्र में उन्होंने लिखा था:

"गुप्तचरों द्वारा ज्ञात हुआ है कि इस समय मुगलों ने आपके प्रदेश पर धावा बोल दिया है। यदि यह सच हो तो हमारा यह पत्र मिलते ही आप अपने प्रदेश के लोगों को सूचित करके किसी ऐसे सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दें जहां शत्रु न पहुँच सके। इसमें यदि आप उपेक्षा करेंगे और मुगल हमारे सैनिकों को पकड़ कर ले-जाएंगे तो उसका पाप आपके सिर चढ़ेगा। अतः गाँव-गाँव रात-दिन घूम कर लोगों को सुरक्षित स्थानों में पहुँचा दें। इसमें एक क्षण की भी देरी न करें……।"

इसी प्रकार १३ मई १६७१ के दिन अपने सेनाधिकारियों के नाम लिखा हुआ शिवाजी का एक पत्र मिला है। उसमें वे लिखते हैं, "……आप लोग अपने पास की घास, दाना वगैरह घोड़ों को अत्यधिक खिला देंगे और आगे चलकर बरसात के दिनों में कुछ भी नहीं मिलेगा, फाके पड़ेंगे, घोड़े मरने लगेंगे, जिसका मतलब यह होगा कि आप ही लोगों ने वे घोड़े मार दिये हैं। तब आप लोग जनता को सताने लगेंगे; अनाज, रोटी, घास, लकड़ी, भाजी, तरकारी आदि लोगों से छीन लायेंगे। इससे जो लोग किसी तरह जी रहे हैं, वे भूखों मरेंगे या भाग जायेंगे। वे सोचेंगे कि ये मराठे तो मुगलों से भी बुरे निकले। वे आप को भला-बुरा कहते रहेंगे।…अतः आपको चाहिए कि आप किसी भी व्यक्ति को न सतायें। जहां आप रहते हैं, वहां से बाहर निकलने की आवश्यकता नहीं है।……आप को जिस वस्तु की आवश्यकता हो, नकद पैसा देकर खरीदें, किसी से जबर्दस्ती न लें……।

सेना के लिए संचित की सूखी घास इधर-उधर पड़ी रहती है, उसका ध्यान रखें। कोई इधर-उधर आग

जलायेगा, तम्बाकू के लिए आग लेगा, उसकी चिंनगारी उड़ कर घास जल जायगी। एक जगह आग लगने पर वह चारों ओर फैल जायगी। तब निवास-स्थान बनाने के लिए कहीं से भी लकड़ी नहीं मिलेगी। अतः अधिकारियों को चाहिए कि वे स्वयं हर जगह घूमकर आग की देख-भाल करें। रात को घर में जलने वाली तेल की बत्ती को चूहा ले जाता है। जिससे आग लगने की सम्भावना रहती है। अतः उसका भी ध्यान रखें। इससे घास की रक्षा होगी और बरसात के दिनों में घोड़ों के प्राण बचेंगे। वरना न घोड़े रहेंगे न तुम लोग रहोगे। इसलिए ये सूचनाएं दी हैं, सब छोटे-बड़े अधिकारी जमा होकर यह पत्र पढ़ें और इसमें दी गयी सूचनाओं पर आचरण करते हुए होशियारी से रहें। अगर ऐसा न हुआ तो मराठों की इज्जत धूल में मिल जायगी। फिर कहां का रोजगार······?"

सारांश यह कि शिवाजी ने अपने कार्य एवं आचरण से एक महान् आदर्श संसार के सामने उपस्थित किया है। जिन विभिन्न उपायों और साधनों के द्वारा शिवाजी ने यह सफलता प्राप्त की वे किसी को नैतिक दृष्टि से भले ही मान्य न हों, परन्तु शिवाजी की यह सफलता एक ज्वलंत वास्तविक सत्य है। एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करना, उपपत्नियाँ रखना, निश्चलपुरी जैसे मन्त्र-तन्त्रज्ञ के सामने झुक कर अन्ध-विश्वासों को दृढ़ बनाना, ब्राह्मणों को अवध्य मानना आदि उनकी कुछ बातें बीसवीं सदी के बुद्धिवादियों के लिए भले ही अग्राह्य हों; पर हमें स्मरण रखना चाहिए कि शिवाजी तीन शताब्दी पहले हुए थे और उस समय के विचार आज के विचारों से बहुत भिन्न थे। अतः शिवाजी

का मूल्यांकन करते समय आज के मानदण्डों से नापना उचित नहीं होगा।

सच तो यह है कि आधुनिक काल के किसी भी अन्य हिन्दू ने संगठन कर सकने की ऐसी प्रतिभा नहीं दिखायी है। अपने उदाहरण द्वारा शिवाजी ने यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दू जाति भी राष्ट्रीय नव-निर्माण कर सकती है, राज्य की स्थापना करना जानती है और शक्तिशाली शत्रुओं को पराजित करना भी उसके लिए असम्भव नहीं है। वह अपनी आत्मरक्षा का भी पूर्ण प्रबन्ध कर सकती है; साहित्य, कला, व्यापार और उद्योग-धन्धों की रक्षा ही नहीं, उनको प्रोत्साहन देकर उनकी उन्नति करना भी उसे आता है; जलसेना का संगठन करने के साथ ही महासिन्धुओं को पार कर सकने वाले अपने ही जहाज़ी बेड़े बनवाना और विदेशियों के साथ होने वाले जलयुद्धों में उनके साथ भी बराबरी की टक्कर लेना उसके लिए कठिन नहीं। सचमुच शिवाजी ने आधुनिक हिन्दुओं को अपनी उन्नति के उच्चतम शिखर पर चढ़ने का पाठ पढ़ाया। इस दृष्टि से देखा जाय तो वे केवल महाराष्ट्र के ही नहीं, किन्तु सारी हिन्दू-जाति के—अपितु उस समस्त जनगण के आराध्य हैं जो अन्याय के सामने झुकना नहीं चाहता, उसका मुकाबला करके उसे मिटा देना चाहता है, फिर वह किसी भी जाति या धर्म का क्यों न हो ?

इसीलिए तो तीन शताब्दियों के पश्चात् विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की लेखनी से उनके लिए ये शब्द निकले :

हे राज तपस्वी वीर, तोमार से उदार-भावना
विधिर भाण्डारे,
सञ्चित हइया गेछे, काल कभु तार एक कणा
पारे हरिबारे ?

तोमार से प्राणोत्सर्ग, स्वदेशलक्ष्मीर पूजाघरे
से सत्यसाधन,
के जानित, हये गेछे चिर युगयुगान्तर-तरे
भारतेर धन ?
मरे ना, मरे ना कभु सत्य जाहा शत शताब्दीर
विस्मृतिर तले—
नाहि मरे उपेक्षाय, अपमाने न हय अस्थिर
आघाते ना टले।
जारे भेबेछिल सबे कोन् काले हयेछे निःशेष
कर्म परपारे—
एल सेइ सत्य तव पूज्य अतिथिर धरि वेश
भारतेर द्वारे ॥

आजि तव नाहि ध्वजा, नाइ सैन्य, रण-अश्वदल,
अस्त्र खरतर—
आजि आर नाहि बाजे आकाशेरे करिया पागल
'हर हर हर'।
शुधु तव नाम आजि पितृलोक हते एल नामि,
करिल आह्वान—
मुहूर्ते हृदयासने तोमारे इ बरिल हे स्वामी,
बाङ्गालिर प्राण॥

माराठार प्रान्त हते एक दिन तुमि धर्मराज,
डेके छिले जबे
राजा बले जानि नाइ, मानि नाइ, पाइ नाइ लाज
से भैरव रवे।

तोमार कृपाण दीप्ति एक दिन जबे चमकिला
बङ्गेर आकाशे
से घोर दुर्योगदिने न बुझिनु रुद्र सेई लीला-
लुकानु तरासे ।।

मगर आज यह स्थिति है कि—

मृत्युसिंहासने. आजि बसियाछ अमर मूरति —
समुन्नत भाले
जे राजकिरीट शोभे लुकाबे ना तार दिव्यज्योति
कभु कोनो काले ।
तोमारे चिनेछि आजि चिनेछि चिनेछि हे राजन्,
तुमि महाराज ।
तव राजकर लये आटकोटि बङ्गेर नन्दन
*दाँड़ाइबे आज ।।**

**टिप्पणियाँ* :—तोमार=तुम्हारी । हइया गेछे=हो गयी है। कभु=कभी। पारे हरिबारे=हरा सकता है ? के जानित=कौन जानता था। जाहा=जो । ना हय=नहीं होता है । जारे=जिसको । भेबेछिल=सोचा था। शुधु=केवल । इते=से । एल नामि=उतर आया। वरिल=वरण किया। डेके छिले=पुकारा था। जानि नाइ=नहीं जाना। ना बुझिनु=नहीं समझता था। सेई=वहीं। लुकानु=छिप गया था। तरासे=भीति से। लुकाबे ना=नहीं छिपायेगा। चिनेछि=पहचाना है। लये=ले कर। नन्दन=पुत्र। दाँड़ाइबे=खड़े रहेंगे।

V.V.R.I.